प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार १९४७

मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
इन्द्रप्रस्थ प्रेस
क्वीन्स रोड, देहली

3124 88

अपनी ओर से

इस पुस्तक मे टालस्टाय के जिन निबन्धो को स्थान दिया गया है, उन्हे अनुवादित और सकलित करने का काम आज से लगभग पाच-छ वर्ष पहले ही पूरा कर लिया गया था। किन्तु युद्धकालीन असाधारण परिस्थितियो के कारण उन्हे इस से पहले पाठको के हाथो मे नही रक्खा जा सका। टालस्टाय के ये निबन्ध पहली बार हिन्दी भाषा-भाषी ससार के सामने रखे जा रहे है। बहुत सी रचनाये ऐसी होती है जिनका मूल्य समय गुजर जाने के साथ नष्ट हो जाता है। किन्तु टालस्टाय की रचनाओ पर यह बात लागू नही होती। जब तक दुनिया में रहने वाले सब लोग अच्छे भले नही बन जाते, दूसरे शब्दो में इस पृथ्वी पर स्वर्ग राज्य स्थापित नही हो जाता, तब तक टालस्टाय की रचनाओ का महत्व और मूल्य नष्ट नही हो सकता। टालस्टाय ने मानवजाति को जो जीवनदायी सन्देश दिया है, युग-युगान्तर तक उसकी आवश्यकता रहेगी। आज तो जब कि मनुष्य तरह-तरह की दुर्बलताओ और कमजोरियो का शिकार बना हुआ है, टालस्टाय के सन्देश पर मनन और अमल किये जाने की और भी अधिक आवश्यकता है। इन निबन्धो को पाठको के हाथो मे अन्तिम रूप से रखने के पहले मैंने उन्हे एक बार फिर शुरू से लगाकर आखीर तक पढा है और मैंने ऐसा महसूस किया है, मानो किसी ने सोये हुए अन्त करण को झकझोर दिया हो। मेरा विश्वास है कि जो भी व्यक्ति इन निबन्धो को पढेगा वह उनसे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। उसकी आत्मा मे एक नई हलचल मच जायगी और वह उत्तम जीवन की ओर आगे बढने के लिए प्रेरित होगा। मेरे लिए तो

यह असीम आत्म-सतोष का विषय है कि टालस्टाय के कल्याणकारी सदेश को इस पुस्तक के रूप मे हिंदी जगत के सामने रखने के लिए एक निमित्त बनने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

प्रत्येक मनुष्य का यह लक्ष्य होना चाहिए कि उसका जीवन उत्तम बने। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसे निरन्तर जागरूक होकर साधना करनी होगी। टालस्टाय ने हमको बताया है कि हम किस प्रकार यह साधना कर सकते है। पहले निबन्ध मे उन्होने आत्म-सयम पर बल दिया है। आधुनिक सभ्यता के प्रशसक यह मानते है कि मनुष्य की आवश्यकताये जितनी ही अधिक बढी हुई होगी, और भोग विलास के जितने ही अधिक साधन उसे उपलब्ध होंगे, उतना ही वह उन्नत और सुखी होगा। टालस्टाय का ठीक इसके विपरीत मत है। वह उत्तम जीवन के लिए आत्म-सयम को आवश्यक समझते है। उनकी शिक्षा हिन्दू धर्म की शिक्षा से बिल्कुल मिलती है। हिन्दू धर्म-शास्त्रो मे भी आत्म-सयम और अपरिग्रह की महत्ता बखानी गई है। टालस्टाय ने उत्तम जीवन की एक कसौटी बना दी है। वह यह कि हम खुद को जितना ही कम प्रेम करेंगे अपने लिए कम चिन्ता करेंगे और अपने स्वार्थ के लिए दूसरो के श्रम का कम उपयोग करेंगे तथा इसके बजाय दूसरो से जितना ही अधिक प्रेम करेंगे, दूसरो की जितनी ही अधिक चिन्ता करेंगे, उनके लिए परिश्रम करेंगे, उतना ही हमारा जीवन उत्तम होगा। दूसरे शब्दो मे मनुष्य जितना ही अधिक दूसरो को देता है और दूसरो से जितना ही कम अपने लिए चाहता है, उतना ही वह श्रेष्ठ होता है।

आज-कल मानव जाति की सेवा करने की कल्पना बडी सस्ती हो रही है। मनुष्य बाप दादों से विरासत मे मिली अथवा खुद के द्वारा उचित अनुचित तरीके से कमाई हुई सम्पत्ति के बल पर सुबह से शाम

तक दूसरो की मेहनत पर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते है, प्रसंगावान सभा-सम्मेलनो और यार दोस्तो के बीच साहित्य, कला और विज्ञान का चर्चा कर लेते है और कभी-कभी श्रमजीवियो की दुर्दशा पर कोई भावनात्मक निवन्ध अथवा कहानी लिख डालते है या समाजवाद के सिद्धान्तो पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान झाड देते है और समझ बैठते है कि वे मानव जाति की बडी भारी सेवा कर रहे है। किन्तु टालस्टाय का कहना है कि जो लोग ऐसा करते है वे अपने को धोखा देते है। जब तक मनुष्य अनावश्यक वस्तुओ का उपयोग करता रहेगा, तब तक वह अपने से कम साधन वाले मनुष्यो के दुख और मुसीबत मे वृद्धि करता रहेगा। अपनी आवश्यकताओ को घटाये विना, अपने विकारो को वश मे किये विना मनुष्य मानव जाति की सेवा नही कर सकता।

आत्मसंयम की पहली सीढी यह है कि मनुष्य अपने स्वाद पर काबू प्राप्त करे। मनुष्य स्वाद के पीछे जितना पागल रहता है, उतना शायद ही और किसी बात के लिए रहता होगा। वह जीभ की भूख को तृप्त करने के लिए प्रत्येक सम्भव तरीके की तलाश मे रहता है। अनेक मनुष्य है जो मासाहार करके बडे प्रसन्न होते है। किन्तु टालस्टाय ने एक रूसी कसाई खाने का आखो देखा जो वर्णन किया है, उसको पढकर क्रूरता, वीभत्सता और अमानुषिकता का एक सजीव चित्र हमारे सामने खडा हो जाता है। टालस्टाय कहते है कि मासाहार पशु-वृत्तियो को बढाता है, वासनाये जागृत करता है और व्यभिचार और शराबखोरी का प्रसार करता है। अत जो मनुष्य उत्तम जीवन विताने की इच्छा रखते हो, इन्हे उनका परित्याग करना ही चाहिए।

दूसरे निबन्ध मे टालस्टाय ने नशाखोरी के कारणो पर प्रकाश डाला है। उनका यह कथन एक दम मौलिक है कि मनुष्य अपने

अन्त करण के आदेशो की उपेक्षा करने के लिए विविध नशे करता है। सभी किस्म के नशों से जिसमे तम्बाकू पीना भी शामिल है, चाहे वे अधिक मात्रा मे किये जाय अथवा कम मे, आत्मा कुण्ठित हो जाती है और मनुष्य इस आत्मा विस्मृति की अवस्था मे न करने योग्य काम करता रहता है। तम्बाकू पीने का रिवाज तो आज समाज मे आश्चर्यजनक रीति से प्रसार पा रहा है। इस दुर्गुण को सभ्यता की निशानी समझ लिया गया है। किन्तु टालस्टाय ने अपनी दलीलो से यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्यो के लिए अन्य नशो की तुलना मे तम्बाकू पीना कम भयकर और हानिकर नही है।

अन्तिम निबन्ध मे टालस्टाय ने रोटी के लिए श्रम करने के स्वय सिद्ध और महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए जिन वस्तुओ की आवश्यकता होती है, उन वस्तुओ के उत्पादन मे प्रत्येक मनुष्य को सबसे पहले हाथ बटाना चाहिए। स्वय शारीरिक श्रम किये बिना जो मनुष्य दूसरो के श्रम से बनी हुई वस्तुओ का उपभोग करता है, वह चोरी करता है। जो दूसरो से प्रेम करने की अथवा मानव जाति की सेवा करने की दुहाई देता है, वह ऐसा नही कर सकता। श्रम विभाजन के नाम पर जो इस प्राथमिक कर्त्तव्य की उपेक्षा करते है, वे मिथ्या भ्रम-जाल उत्पन्न करते है। प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह साहित्य-प्रेमी हो, वैज्ञानिक हो, न्यायाधीश हो, शिक्षक हो अथवा और कुछ हो, उत्पादक शारीरिक श्रम अवश्य करना चाहिए। इसी लिए टालस्टाय ने भाग्यवान लोगो से अपील की है कि वे जरा ऊपर से नीचे उतर आवे और जो लोग भूखो के लिए भोजन पैदा करते और नगो के लिए वस्त्र तैयार करते है उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खडे हो जाय। आज महात्मा गाधी यज्ञ के रूप मे चर्खा कताई पर जो जोर दे रहे है उसका यही रहस्य है।

टालस्टाय के निबन्धो के बारे मे अधिक लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। वह हमारे हृदय और मस्तिष्क दोनो को अपील करते है। उनके पास दलीलो का अगाध भण्डार है और उनकी युक्ति-सगत दलीले मस्तिष्क की राह सीधी हृदय मे बैठ जाती है। श्री राजगोपालाचार्य ने कहा है कि यदि किसी को हिन्दू धर्म को उसके सम्पूर्ण वास्तविक अर्थो मे समझना हो तो उसे परमहस राम-कृष्ण के उद्गारो का सकलन पढना चाहिए। यदि कोई मुझसे यह पूछे कि एक इंसान को अच्छा इसान बनाने के लिए कौनसी पुस्तके पढनी चाहिये तो मै निस्सकोच कहूगा कि उसे टालस्टाय की रचनाये पढनी चाहिये । आशा है यह पुस्तक सोते हुए मनुष्य को जगायेगी और उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिए प्रेरित करेगी।

तिलक पुण्यतिथि
१ अगस्त १९४७
नई दिल्ली

—शोभालाल गुप्त

विषय सूची

आत्म-संयम

[१]

यदि एक आदमी काम करने का बहाना नहीं कर रहा है, बल्कि हाथ में लिये हुए काम को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील है, तो उसके प्रयत्नों का कार्य के स्वरूप के अनुसार अनिवार्यतः एक खास सिलसिला होगा। कार्य के स्वरूप के अनुसार जो बात उसे पहले करना चाहिए, यदि वह उसको बाद के लिए छोड़ देता है, अथवा उसके कुछ आवश्यक हिस्से को सर्वथा छोड़ देता है, तो निश्चय ही वह गम्भीरतापूर्वक काम नहीं कर रहा बल्कि काम का बहाना मात्र कर रहा है। चाहे काम शारीरिक हो, अथवा, अन्य प्रकार का, यह नियम समान रूप से लागू होता है। जबतक कोई पहले आटा न गूंदे, चूल्हे की राख हटाकर उसमें आग न लगावे तब तक यह कैसे कहा जाता है कि वह सचमुच रोटी पकाना चाहता है, इसी प्रकार आवश्यक गुण प्राप्त करने के लिए जब तक कोई एक सिलसिले से कुछ खास नियमों का पालन नहीं करता, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सचमुच सद्गीता सिखाना चाहता है।

अभाव से यह प्रकट हो जाता है कि वे केवल बहाना कर रहे है, किन्तु जब मनुष्य सद्जीवन बिताने का बहाना करता होता है तो हमारे पास यह मालूम करने के कोई प्रत्यक्ष चिन्ह नहीं होते कि वह सचमुच प्रयत्न कर रहा है या केवल बहाना कर रहा है, कारण सद्जीवन के परिणाम न केवल आसपास के लोगो के सामने हमेशा स्पष्ट और बुद्धिगम्य ही नही होते, बल्कि ये परिणाम उन्हे बहुधा हानिकारक प्रतीत होते है। किसी व्यक्ति के कार्यों के प्रति आदर की भावना होना और उसके समकालीन व्यक्तियो द्वारा उन कार्यों की उपयोगिता और अच्छाई का स्वीकार किया जाना इस बात का प्रमाण नही हो सकता कि वस्तुतः उसका जीवन अच्छा जीवन है।

इसलिए सद्जीवन के बाह्य दिखावे और असलियत मे भेद करने के लिए एक खास नियमित सिलसिले से गुणो की प्राप्ति द्वारा जो संकेत मिलता है, वह खास तौर पर बहुमूल्य होता है। यह संकेत इसलिए बहुमूल्य नही होता कि इसके द्वारा हम अच्छाई की दिशा मे दूसरे लोगो की कोशिशो की गम्भीरता का पता लगा सकते है बल्कि उसके द्वारा हम अपनी सच्चाई को ही कसौटी पर परख सकते है, कारण इस दिशा मे हम दूसरो को धोखा देने की अपेक्षा अपने आपको बहुत अधिक धोखा दे सकते है।

सद्जीवन की ओर प्रगति करने के लिए मनुष्य को क्रमपूर्वक सद्गुणो को प्राप्त करना चाहिए। फलस्वरूप मानव जाति के गुरुओ ने इस प्रकार के सद्गुणो का हमेशा एक निश्चित क्रम निर्धारित किया है।

समस्त नैतिक शिक्षाओं ने सीढ़ियां निर्धारित की हुई है और जैसा कि चीनी कहावत है, ये सीढ़ियां पृथ्वी से स्वर्ग को जाती है। इन सीढ़ियो के शिखर पर तभी पहुंचा जा सकता है जब निम्नतम सीढ़ी से ऊपर चढ़ना शुरू किया जाय। हिन्दुओ, बौद्धो, और कन्फ्युशियनो का और यूनानी तत्त्ववेत्ताओ की शिक्षाओ मे भी सीढ़ियां निर्धारित कर

दी गई है और नीचे की सीढी पहले पार किये बिना ऊपर की सीढी पर नही पहुचा जा सकता। मानव जाति के समस्त नैतिक गुरुओ ने चाहे वे धार्मिक श्रेणी के रहे हो या अधार्मिक श्रेणी के, सद्-जीवन के लिए जरूरी गुणो के एक निश्चित क्रम की आवश्यकता स्वीकार की है। इस क्रम की आवश्यकता सृष्टि की व्यवस्था मे स्वय सिद्ध है और इस लिए स्वभावत हरेक आदमी को उसे मान लेना चाहिए।

किन्तु यह अजीब बात है कि लोगो मे सद्गुणो के इस आवश्यक क्रम का मान अधिकाधिक कम होता जा रहा है और अब केवल साधु-सन्त ही उसका ख्याल रखते है। साधारण गृहस्थ तो यह समझते है कि न केवल निम्न श्रेणी के गुणो का अभाव होते हुए भी, जो कि उच्च गुणो के लिए आवश्यक होते है उच्च गुण प्राप्त किये जा सकते है। बल्कि बडे से बडे दुर्गुणो के साथ भी उच्च गुण सम्भव हो सकते है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज के अधिकाश लोगो के दिमागो मे सद्-जीवन किसे कहते है इस बारे मे बडा भ्रम पैदा हो गया है।

[२]

आजकल लोगो को इस बात की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती कि उत्तम जीवन बिताने के लिए मनुष्य को अपने भीतर एक क्रम से सद्गुणो का विकास करना चाहिए। फलस्वरूप लोगो का इस बात का ज्ञान भी नष्ट हो गया है कि उत्तम जीवन किसे कहते है। मेरे ख्याल से यह इस प्रकार घटित हुआ है।

जब ईसाई धर्म का उदय हुआ तो उसने पहले की अपेक्षा अधिक उच्च नैतिक आदर्श प्रचलित किये और साथ ही सद्गुणो की प्राप्ति के लिए एक अनिवार्य क्रम भी निर्धारित कर दिया अर्थात् उत्तम जीवन बिताने के लिए कुछ उपाय प्रस्तुत किये। ईसाई धर्म ने यह कोई नई बात नहीं की। उसके पहले भी नैतिकता का एक क्रम बना

हुआ था ।

प्लेटो ने जिन सद्गुणो का प्रतिपादन किया था, उनमे पहला स्थान आत्म-सयम को दिया गया, उसके बाद साहस और बुद्धिमत्ता को और अन्त मे न्याय को। ईसाई धर्म के अनुसार सदगुणो की शुरुआत आत्म-त्याग से होती है और फिर भक्ति और सर्वार्पण के बाद प्रेम को स्थान दिया गया है।

जिन लोगो ने गम्भीरता-पूर्वक ईसाई धर्म को स्वीकार किया और उसके अनुसार सद्जीवन बिताने का प्रयास किया, उन्होने ईसाई धर्म को इसी रूप मे समझा और अपनी वासनाओ का परित्याग कर सद्-जीवन बिताना प्रारम्भ किया। इस आत्म त्याग मे आत्म-सयम का भी समावेश हो जाता है।

किन्तु यह नही समझना चाहिए कि इस मामले मे ईसाई धर्म ने केवल अन्य धर्मो का अनुसरण मात्र किया। मै ईसाई धर्म को उसके उच्च स्थान से अन्य अल्प-विकसित धर्मो की श्रेणी मे नही बिठा सकता। यदि मुझ पर ऐसा करने का दोष लगाया जायगा तो यह मेरे प्रति अन्याय होगा, कारण मै ईसाई धर्म की शिक्षा को ससार मे सर्व श्रेष्ठ मानता हू। वह अल्प विकसित धर्मो की शिक्षाओ से सर्वथा भिन्न है। ईसाई धर्म की शिक्षा पूर्व प्रचलित शिक्षा का स्थान इसी लिए ले सकी कि वह उससे भिन्न और उच्च थी। किन्तु दोनो ही प्रकार की शिक्षाये मनुष्यो को सत्य और श्रेष्ठता की ओर ले जाती है और चूकि ये हमेशा एक जैसी होती है, इसलिए उनको प्राप्त करने का मार्ग भी एक ही होना चाहिए। और उस मार्ग पर आगे बढने के प्रथम प्रयास भी अनिवार्यत ईसाई और अईसाई दोनो के लिए समान हो।

ईसाई और अईसाई सद-जीवन की शिक्षा मे यह अन्तर है कि जहा अईसाई शिक्षा अन्तिम पूर्णता की शिक्षा है, वहा ईसाई शिक्षा असीम पूर्णता की शिक्षा है। प्रत्येक अईसाई शिक्षा मनुष्य के सामने

अन्तिम पूर्णता का आदर्श उपस्थित करती है, किन्तु ईसाई शिक्षा उसके सामने असीम पूर्णता का आदर्श उपस्थित करती है। उदाहरण के लिए तत्वज्ञानी प्लेटो न्याय को पूर्णता का आदर्श बताता है किन्तु ईसा का आदर्श प्रेम की असीम पूर्णता है। बाइबिल में कहा है, 'तुम वैसे ही पूर्ण बनो जैसे स्वर्ग में तुम्हारे परम पिता पूर्ण हैं।' यही वह अन्तर है और इसी के फलस्वरूप अईसाई और ईसाई शिक्षाओं में विभिन्न श्रेणी के सद्गुणों को अलग-अलग महत्त्व दिया गया है। अईसाई शिक्षा के अनुसार सर्वश्रेष्ठ सद्गुण प्राप्त किया जा सकता है और इस दिशा में प्रत्येक कदम का तुलनात्मक महत्त्व होता है। जितना ही अधिक बड़ा कदम उठाया जायगा उतना ही बड़ा उसका महत्त्व होगा। इस प्रकार अईसाई दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्यों को नैतिक और अनैतिक कम-नैतिक या अधिक नैतिक श्रेणियों में बांटा जा सकता है। किन्तु ईसाई शिक्षा के अनुसार जो असीम पूर्णता का आदर्श उपस्थित करती है इस प्रकार का विभाजन नहीं किया जा सकता। उसके अनुसार उच्चतर और निम्नतर श्रेणियां नहीं हो सकतीं। उसमें तो सर्वोच्च आदर्श की ओर प्रत्येक प्रयास को समान माना जाता है।

वह असीम पूर्णता की ओर आगे बढेगा, उसी के अनुसार वह कम या अधिक मात्रा मे ईसाई कहलाने का अधिकारी होगा। यही कारण है कि पुराणपंथी की गतिरहित न्याय-निष्ठा को शूली पर चढने वाले पश्चाताप मनप्त चोर की प्रगति मे निकम्मा समझा गया।

ईसाई और अईसाई शिक्षाओ मे यही अन्तर है। फलत सद्गुणो की जो सीढियाँ अर्थात् आत्म-सयम और साहस अईसाई समाज मे योग्यता की कसौटी समझी जाती है, ईसाई धर्म मे उनका वैसा कोई महत्त्व नही समझा जाता। इसी सम्बन्ध मे दोनो शिक्षाओ मे अन्तर है। किन्तु नीचे की सीढियो पर चढे बिना सद्गुणो की ओर, पूर्णता की ओर कोई प्रगति नही हो सकती, इस बारे मे ईसाई और अईसाई शिक्षाओ मे समानता है। इस विषय मे कोई अन्तर नही हो सकता।

ईसाई को अईसाई की भाँति ही अपने आपको पूर्ण बनाने की शुरूआत करनी पडेगी अर्थात् उसे वही से प्रारम्भ करना पडेगा, जहाँ से अईसाई शुरू करता है—उसे आत्म-सयम का आश्रय लेना होगा। जो मनुष्य ऊपर की मंजिल मे जाना चाहता है, वह नीचे की सीढियो को पार किये बिना ऊपर नही जा सकता। अन्तर है तो सिर्फ यही कि जहाँ अईसाई व्यक्ति के लिए आत्म-सयम स्वय एक सद्गुण है, वहाँ ईसाई के लिए वह उस आत्म-त्याग का एक अग है जो पूर्णता प्राप्त करने की हर आकाक्षा का अनिवार्य कर्तव्य है। इसलिए देखने मे सच्चे ईसाई धर्म को उसी पथ का अनुसरण करना पडता है, जिसका अईसाई समाज ने निर्देश और अनुसरण किया है।

किन्तु सभी लोगो ने ईसाई धर्म को पूर्णता प्राप्त करने की आकाक्षा के रूप मे ग्रहण नही किया है। अधिकाश लोग इसको मुक्ति प्राप्त करवाने वाली शिक्षा समझते है। ठीक इसी शिक्षा ने ईसाई धर्म की नैतिक शिक्षा के प्रति मनुष्यो की हार्दिकता और गम्भीरता को नष्ट कर दिया है। विविध ईसाई सम्प्रदायो के प्रतिनिधि चाहे जितना [illegible] क्यो न करे कि उनके मुक्ति के साधन मनुष्य के सद्-

जीवन प्राप्त करने के मार्ग में बाधक नहीं होते, बल्कि उलटे साधक होते हैं, फिर भी अमुक मन्तव्यों से अमुक निष्कर्ष निकलते ही हैं। फिर आप चाहे जितनी दलीलें दीजिए यदि एक बार आपने उन मन्तव्यों को स्वीकार कर लिया तो उनसे पैदा होने वाले निष्कर्षों को भी मानना ही पड़ेगा। यदि एक आदमी यह विश्वास करता है कि पादरी की दया से वह बच सकता है तो स्वभावतः वह यह सोचेगा कि सद्जीवन बिताने के लिए प्रयत्न करना बेकार है—खासकर उस समय जब उसे यह कहा जाता हो कि अपने प्रयत्नों से अच्छा बनने की आशा करना भी एक पाप है। फलस्वरूप जो मनुष्य यह मानता है कि पाप या पाप के परिणामों से बचने के लिए अपने खुद के प्रयत्नों के अलावा भी अन्य साधन है वह उस व्यक्ति के समान उत्साह और गम्भीरता से प्रयत्न नहीं कर सकता जो अन्य साधनों से अनभिज्ञ है। और जब पूरी गम्भीरता के साथ प्रयत्न नहीं किया जाता और व्यक्तिगत प्रयत्नों के अलावा अन्य साधनों का ज्ञान भी होगा तो मनुष्य उत्तम जीवन के लिए आवश्यक सद्गुणों की प्राप्ति के अनिवार्य क्रम की भी अनिवार्यतः उपेक्षा करेगा। जो लोग ईसाई धर्म को मानते हैं उनमें से अधिकांश की यही अवस्था हुई है।

[२]

वह असीम पूर्णता की ओर आगे बढेगा, उमी के अनुसार वह कम या अधिक मात्रा मे ईसाई कहलाने का अधिकारी होगा। यही कारण है कि पुराणपथी की गतिरहित न्याय-निष्ठा को शूली पर चढने वाले पश्चाताप मनप्त चोर की प्रगति मे निकम्मा ममझा गया।

ईसाई और अईसाई शिक्षाओ मे यही अन्तर है। फलत सद्गुणों की जो सीढियाँ अर्थात् आत्म-सयम और साहस अईसाई समाज मे योग्यता की कसौटी समझी जाती है, ईसाई धर्म मे उनका वैसा कोई महत्त्व नही समझा जाता। इसी सम्बन्ध मे दोनो शिक्षाओ मे अन्तर है। किन्तु नीचे की सीढियो पर चढे बिना सद्गुणो की ओर, पूर्णता की ओर कोई प्रगति नही हो सकती, इस बारे मे ईसाई और अईसाई शिक्षाओ मे समानता है। इस विषय मे कोई अन्तर नही हो सकता।

ईसाई को अईसाई की भाँति ही अपने आपको पूर्ण बनाने की शुरू-आत करनी पडेगी अर्थात् उसे वही से प्रारम्भ करना पड़ेगा, जहाँ से अईसाई शुरू करता है—उसे आत्म-सयम का आश्रय लेना होगा। जो मनुष्य ऊपर की मजिल मे जाना चाहता है, वह नीचे की सीढियो को पार किये बिना ऊपर नही जा सकता। अन्तर है तो सिर्फ यही कि जहाँ अईसाई व्यक्ति के लिए आत्म-सयम स्वय एक सद्गुण है, वहाँ ईसाई के लिए वह उस आत्म-त्याग का एक अग है जो पूर्णता प्राप्त करने की हर आकाक्षा का अनिवार्य कर्तव्य है। इसलिए देखने मे सच्चे ईसाई धर्म को उसी पथ का अनुसरण करना पडता है, जिसका अईसाई समाज ने निर्देश और अनुसरण किया है।

किन्तु सभी लोगो ने ईसाई धर्म को पूर्णता प्राप्त करने की आकाक्षा के रूप मे ग्रहण नही किया है। अधिकाश लोग इसको मुक्ति प्राप्त करवाने वाली शिक्षा समझते है। ठीक इसी शिक्षा ने ईसाई धर्म की नैतिक शिक्षा के प्रति मनुष्यो की हार्दिकता और गम्भीरता को नष्ट कर दिया है। विविध ईसाई सम्प्रदायो के प्रतिनिधि चाहे जितना पिष्ट-पेषण क्यो न करे कि उनके मुक्ति के साधन मनुष्य के सद्-

जीवन प्राप्त करने के मार्ग में बाधक नहीं होते, बल्कि उलटे साधक होते हैं, फिर भी अमुक मन्तव्यों से अमुक निष्कर्ष निकलते ही हैं। फिर आप चाहे जितनी दलीलें दीजिए यदि एक बार आपने उन मन्तव्यों को स्वीकार कर लिया तो उनसे पैदा होने वाले निष्कर्षों को भी मानना ही पड़ेगा। यदि एक आदमी यह विश्वास करता है कि पादरी की दया से वह बच सकता है तो स्वभावतः वह यह सोचेगा कि सद्जीवन बिताने के लिए प्रयत्न करना बेकार है—खासकर उस समय जब उसे यह कहा जाता हो कि अपने प्रयत्नों से अच्छा बनने की आशा करना भी एक पाप है। फलस्वरूप जो मनुष्य यह मानता है कि पाप या पाप के परिणामों से बचने के लिए अपने खुद के प्रयत्नों के अलावा भी अन्य साधन हैं वह उस व्यक्ति के समान उत्साह और गम्भीरता से प्रयत्न नहीं कर सकता जो अन्य साधनों से अनभिज्ञ है। और जब पूरी गम्भीरता के साथ प्रयत्न नहीं किया जायगा और व्यक्तिगत प्रयत्नों के अलावा अन्य साधनों का ज्ञान भी होगा तो मनुष्य उत्तम जीवन के लिए आवश्यक सद्गुणों की प्राप्ति के अनिवार्य क्रम की भी अनिवार्यतः उपेक्षा करेगा। जो लोग ईसाई धर्म को मानते हैं, उनमें से अधिकांश की यही अवस्था हुई है।

[२]

आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य व्यक्तिगत प्रयत्न करे, बल्कि उसकी प्राप्ति के अन्य साधन भी हैं—इस सिद्धान्त ने उत्तम जीवन बिताने के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों में शिथिलता पैदा कर दी और लोग इस बात की उपेक्षा करने लगे कि सद्जीवन के लिए क्रमपूर्वक सद्गुणों का विकास किया जाना चाहिए।

जिन लोगों ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया, उनमें से अधिकांश

ने उसको बाहरी तौर पर ही स्वीकार किया उन्होंने पौराणिक वाद के स्थान पर ईसाई धर्म की स्थापना का लाभ उठाकर अपने-आप को पौराणिक सद्गुणो की प्राप्ति के झंझट मे मुक्त कर लिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी पशु-वृत्ति से सघर्ष करना छोड दिया।

जो लोग गिर्जे की शिक्षाओ पर विश्वास करना छोड देते है, उनकी भी ऐसी ही दशा होती है। उनको भी ईसाई धर्म के उपासकों के समान समझना चाहिए। ये 'प्रभु-कृपा' के बजाय अधिकाश लोगों द्वारा पसन्द किये जाने वाले किसी काल्पनिक अच्छे काम का अर्थात् विज्ञान, कला अथवा मानवता का सहारा लेते है और इस प्रकार के कल्पित अच्छे काम के नाम पर यह समझ बैठते है कि सद्जीवन के लिए क्रमपूर्वक सद्गुणो का विकास करना आवश्यक नही है। ये लोग रग-मच के अभिनेताओ की भाँति उत्तम जीवन बिताने का बहाना करके ही सन्तोष मान लेते है।

जिन लोगो ने ईसाई धर्म को उसके यथार्थ रूप मे स्वीकार नही किया, और पौराणिकवाद से विचलित हो गये, वे आत्म-त्याग और आत्म-सयम को छोडकर ईश्वरीय और मानवीय प्रेम तथा न्याय का उपदेश देने लगे अर्थात् निम्न सद्गुणो को छोडकर उच्च सद्गुणो का प्रचार करने लगे। दूसरे शब्दो मे उन्होंने असली सद्गुणो का नही बल्कि दिखावटी सद्गुणो का प्रचार किया।

कुछ लोग आत्म-त्याग किये बिना ही ईश्वर और मनुष्य से प्रेम करने का उपदेश देते है और कुछ आत्म-सयम किये बिना मानवीयता, मानवता की सेवा का प्रचार करते है। और चूकि यह शिक्षा एक ओर मनुष्य को उच्च नैतिक आसन पर स्थित होने का दम्भ करने का मौका देती है और दूसरी ओर उसे अत्यन्त मूल-भूत नैतिक नियमो से मुक्त करके उसकी पशु-वृत्ति को प्रोत्साहन देती है, इसलिए धर्म पर आस्था रखनेवाले और न रखनेवाले दोनो ही इस शिक्षा को तत्काल स्वीकार कर लेते है।

कुछ समय पहले की बात है कि पोप का समाजवाद पर एक गश्ती-पत्र प्रकाशित हुआ था। इस पत्र मे समाजवाद के इस दृष्टिकोण का खण्डन किया गया था कि सम्पत्ति पर व्यक्ति का अधिकार माना जाना एक अन्याय है। उसमे साफ तौर पर यह कहा गया था कि 'अपनी खुद की अथवा अपने गृहस्थी की आवश्यकता के लिए जिस चीज की जरूरत हो, धर्म उसे दूसरो मे बाटने का आदेश नही देता और न ही अपने पद-प्रतिष्ठा के अनुसार जीवन बिताने के लिए जिस चीज की आवश्यकता हो उसे दूसरो को देना चाहिए। कारण किसी को भी अपने पद-प्रतिष्ठा के प्रतिकूल जीवन न बिताना चाहिए, किन्तु जब आवश्यकता की भलीभांति पूर्ति हो जाय और अपनी पद-प्रतिष्ठा का भली प्रकार विचार कर लिया जाय तब जो कुछ बच रहे, उसमे से गरीबो को देना कर्तव्य है। जो कुछ बच रहे, उसका दान करो।'

यह है वह उपदेश जो गिर्जों के मुखिया ने अर्थात् पोप महोदय ने दिया है। गिर्जे के अन्य पादरी भी ऐसा ही उपदेश देते है, जो यह मानते है कि केवल कर्म द्वारा मुक्ति नही हो सकती। एक ओर तो ये लोग यह स्वार्थमय शिक्षा देते है कि तुम अपने पडौसियो को वही वस्तु दे सकते हो जिसकी तुम्हे खुद को आवश्यकता न हो, और दूसरी ओर से प्रेम का उपदेश देते है।

यद्यपि बाइबिल मे आत्म-त्याग के आदेश भरे पडे है और यह बताया गया है कि पूर्णता प्राप्त करने के लिए आत्म-त्याग की सर्व-प्रधान आवश्यकता होती है फिर भी लोग जब यह यकीन कर लेते है और दूसरो को करा देते है कि जिस वस्तु का सेवन करने का उन्हे अभ्यास पडा हुआ है अथवा जिस वस्तु को वे अपनी शान के लिए आवश्यक समझते है उसका त्याग किये बिना ही मनुष्यो से प्रेम किया जा सकता है। जो लोग गिर्जे और ईसाई धर्म को नही मानते और अपने-आपको स्वतन्त्र विचारक कहते है वे भी इसी प्रकार सोचते, लिखते और काम करते है। वे लोग खुद भी समझ लेते है और दूसरे

को भी समझाने की कोशिश करते है कि अपनी आवश्यकताओ को घटाये बिना, अपने विकारो को वश मे किये बिना ही वे मानव जाति की सेवा कर सकते है, उत्तम जीवन बिता सकते है।

मनुष्यो ने सद्‌गुणो के पौराणिक क्रम को एक ओर ताक मे रख दिया और ईसाई धर्म की शिक्षाओ का वास्तविक अर्थ ग्रहण न करने के कारण ईसाई क्रम को भी स्वीकार नही किया। इस प्रकार वे पथ प्रदर्शन को खो बैठे।

[४]

पुराने ज़माने मे जब ईसाई शिक्षाओ का प्रादुर्भाव नही हुआ था सुकरात से लगा कर अन्य सभी धर्म गुरुओ ने आत्म-सयम को जीवन का सर्वप्रथम सद्‌गुण समझा। यह खयाल किया जाता था कि हरेक सद्‌गुण का प्रारम्भ आत्म-सयम से होना चाहिए और उसको प्राप्त करने के बाद ही अन्य गुण प्राप्त किये जा सकते है। यह साफ तौर पर समझा जाता था कि जिस आदमी ने आत्म-सयम नही किया और अपनी असख्य इच्छाये बढा कर उनके अधीन हो गया, वह उत्तम जीवन नही बिता सकता। यह भी स्पष्ट था कि उदारता और प्रेम की बात तो दूर रही, तटस्थता और न्याय की कल्पना करने के पहिले मनुष्य को सयम का पाठ सीखना चाहिए। हमारे आजकल के विचारो के अनुसार इस प्रकार की किसी बात की आवश्यकता नही। हमको पक्का यकीन है कि जिस मनुष्य ने अपनी इच्छाओ को समाज मे अधिक-से अधिक बढा लिया है और जो मनुष्य उसे गुलाम बनाकर रखनेवाली सैकडो अनावश्यक आदतो को सन्तुष्ट किये बिना जीवित नही रह सकता, वही मनुष्य सर्वथा नैतिक और उत्तम जीवन बिता सकता है। किसी भी दृष्टिकोण से देखिये, चाहे वह उपयोगितावाद का निम्नतम दृष्टिकोण हो, चाहे पौराणिकवाद का उच्चतर दृष्टिकोण (जो न्याय पर

जोर देता है) अथवा सर्वश्रेष्ठ ईसाई दृष्टिकोण हो (जो प्रेम का आदेश देता है) आपको निश्चय ही यह साफ तौर पर मालूम होगा कि जो मनुष्य दूसरो के श्रम का, बहुधा कष्टकारक श्रम का, अपने आनन्द के लिए उपयोग करता है (इस श्रम के बिना वह आसानी से काम चला सकता है) वह अन्याय करता है। और यही वह पहला अन्याय है जिसको यदि वह उत्तम जीवन बिताना चाहता है तो उसे छोड देना चाहिए।

उपयोगितावाद के दृष्टिकोण के अनुसार इस प्रकार का आचरण बुरा है, कारण जब तक मनुष्य दूसरो को अपने लिए काम करने को मजबूर करता है, तब तक उसकी सदा अस्थिर दशा बनी रहती है, वह अपनी इच्छाओ को सन्तुष्ट करने का आदी हो जाता है और उनका गुलाम बन जाता है तथा जो लोग उसके लिए काम करते है, उनमे उसके प्रति ईर्ष्या और घृणा के भाव पैदा हो जाते है और वे उस घडी की प्रतीक्षा मे रहते है जब वे अपने आप को उस काम के बन्धन से मुक्त कर सके। फलस्वरूप उस आदमी के लिए हमेशा इस बात का खतरा रहता है कि वह अपनी जड जमा कर बैठी हुई आदतो को सन्तुष्ट करने मे असमर्थ हो जाय।

न्याय के दृष्टिकोण से भी ऐसा आचरण बुरा है, कारण अपने आनन्द के लिए उन लोगो से श्रम कराना उचित नही है जो इस आनन्द का सौवा हिस्सा भी अपने लिए प्राप्त नही कर सकते।

ईसाई धर्म द्वारा अनुमोदित प्रेम के दृष्टिकोण के अनुसार यह सिद्ध करने की शायद ही जरूरत हो कि जो मनुष्य दूसरो से प्रेम करता है वह अपने आनन्द के लिए दूसरो की मेहनत के फल का उपभोग करने के बजाय स्वय उनके लिए काम करेगा।

किन्तु आधुनिक समाज मे उपयोगिता, न्याय और प्रेम के आदेशो की सर्वथा अवहेलना की जाती है। अपनी इच्छाओ को मर्यादित करना न तो सर्वप्रथम और न ही अन्तिम कर्तव्य समझा जाता है। उत्तम जीवन

के लिए इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती ।

इसके विपरीत जीवन की प्रचलित और बहुमान्य शिक्षा के अनुसार अपनी इच्छाओं में वृद्धि करना आवश्यक माना जाता है, इसे विकास, सभ्यता, संस्कृति और पूर्णता का चिन्ह समझा जाता है। पढ़े लिखे कहलाने वाले लोग आराम-सूचक आदतों यानी स्त्रियोचित नजाकत को न केवल निर्दोष बल्कि उत्तम समझते हैं, नैतिक उच्चता का द्योतक मानते हैं। वे इसे करीब-करीब एक सद्गुण ही मान बैठे हैं।

यह खयाल किया जाता है कि आवश्यकताओं की मात्रा जितनी ही अधिक होगी और आवश्यकतायें जितनी सुसंस्कृत (बढ़ी-चढ़ी) होंगी, उतना ही अच्छा होगा। गत दो शताब्दियों की वर्णनात्मक कविता और खास कर उपन्यासों से यह बात भली भांति प्रकट हो जाती है। सद्गुणों को व्यक्त करने वाले नायक और नायिकाओं का इनमें कैसा चित्र खींचा गया है? अधिकतर उदाहरण ऐसे मिलते हैं कि जिनको उच्चता और श्रेष्ठता का प्रतिनिधि माना गया है, वे पथभ्रष्ट आलसियों के अतिरिक्त कुछ नहीं। वे हजारों लोगों के श्रम का लाभ उठा कर आनन्द लूटते हैं और खुद किसी के लिए कुछ भी उपयोगी काम नहीं करते। इन उपन्यासों में नायिकायें भी ऐसी चित्रित की गई हैं जो ऐसे लोगों का किसी न किसी तरह मनोरंजन करती हैं, उनके समान ही आलसी होती हैं, और उनकी तरह ही अपने भोग-विलास की खातिर दूसरों के श्रम को हड़पने को सदा उद्यत रहती हैं।

मैं उनका जिक्र नहीं करता जो वास्तव में संयमी और परिश्रमी हैं और जिनका साहित्य में कहीं-कहीं अस्तित्व पाया जाता है। मैं तो सामान्य नमूने का जिक्र करता हूं जो सर्वसाधारण के लिए आदर्श का काम देता है। मैं तो उस चरित्र का उल्लेख करता हूं जिसको अपनाने का अधिकांश स्त्री पुरुष प्रयत्न कर रहे हैं। मुझे याद है कि जब मैंने उपन्यास लिखे थे तो मुझे कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। मैं मानता हूं कि उन उपन्यासकारों को, जिन्हें वास्तविक नैतिक सौन्दर्य

को धुंधली सी भी कल्पना होती है मेरे ही समान कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कठिनाई इस बात की होती है कि उच्च श्रेणी के किसी ऐसे पात्र का चित्रण किया जाय जो आदर्श रूप से भला और दयालु हो और साथ ही चित्रण वास्तविक भी हो। वास्तविक चित्रण करने के लिए उच्च, पढ़े लिखे वर्ग के स्त्री पुरुष को उसके सामान्य वातावरण में दिखाना चाहिए अर्थात उसके भोग-विलास शारीरिक बेकारी और दूसरों से सेवायें लेना आदि का वर्णन किया जाना चाहिए। नैतिक दृष्टि से इस प्रकार का मनुष्य निश्चय ही अवाछनीय समझा जायगा। किन्तु उसका इस प्रकार का चित्रण करना आवश्यक होता है ताकि वह आकर्षक प्रतीत हो। और उपन्यासकार उसको ऐसा ही चित्रित करने की कोशिश करते हैं। मैंने भी ऐसा ही किया था और विचित्र बात यह है कि ऐसा चित्र चित्रित करने में अर्थात् एक नैतिकता-विहीन व्यभिचारी और हत्यारे, सर्वथा निरुपयोगी, बेकार इधर-उधर डोलने वाले, बने-ठने हास्य-पात्र को आकर्षक चित्रित करने में अधिक कला अथवा प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। उपन्यासों के पाठक अधिकतर ऐसे ही आदमी होते हैं और इसलिए फौरन विश्वास कर लेते हैं कि उपन्यासों के ऐसे पात्र वस्तुतः बड़े श्रेष्ठ आदमी होते हैं।

[५]

आज कल के लोग आत्म-संयम और आत्म-त्याग को वस्तुत उत्तम और वाछनीय सद्गुण नहीं समझते, बल्कि इसके विपरीत आवश्यकताओं में वृद्धि करने की इच्छा और उन्नति का द्योतक समझते हैं। इस बात का स्पष्ट प्रमाण वह शिक्षा है जो हमारे समाज में अधिकतर बालकों को दी जा रही है। उनको आत्म-संयम अथवा आत्म-त्याग की शिक्षा नहीं दी जाती बल्कि उनको जान बूझ कर नजाकत, शारीरिक

बेकारी और विलासिता की शिक्षा दी जाती है।

मेरी बहुत दिनो से यह इच्छा रही कि निम्न कथानक वाली एक कहानी लिखू । एक स्त्री को एक दूसरी स्त्री हानि पहुचाती है । पहली स्त्री बदला लेने पर उतारु होती है । वह अपने शत्रु का बच्चा उठा ले जाती है और एक जादूगर के पास जाकर यह पूछती है कि यह चुरा कर लाये हुए शिशु का—अपने शत्रु के एक मात्र शिशु से किस प्रकार कडे से कडा बदला ले। जादूगर शिशु को एक खास जगह ले जाने के लिए कहता है और स्त्री को यकीन दिलाता है कि वहा उससे भयकर बदला ले लिया जायगा। दुष्ट स्त्री जादूगर की सलाह मान लेती है, किन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य होता है कि उस शिशु को एक निस्सन्तान धनिक गोद ले लेता है । स्त्री पुन जादूगर के पास जाती है और उसे बुरा भला कहती है । जादूगर उसे प्रतीक्षा करने को कहता है। शिशु विलासिता और नजाकत के वातावरण मे बडा होता है । स्त्री असमजस मे पड जाती है, किन्तु जादूगर उसे फिर प्रतीक्षा करने को कहता है । आखिर ऐसा वक्त आता है जब दुष्ट स्त्री न केवल सन्तुष्ट हो जाती है बल्कि उसे अपने शत्रु के पुत्र पर दया आने लगती है । वह सम्पतिजनित भोग-विलास और स्वच्छदता के वातावरण मे बडा होता है और अपनी अच्छी प्रकृति के कारण बर्बाद हो जाता है। इसके बाद शारीरिक कष्टो, दरिद्रता और अपमान का युग प्रारम्भ होता है । खासकर अपमान उसके हृदय मे शूल की तरह चुभता है किन्तु उसे पता नही होता कि उसका उसे किस प्रकार सामना करना चाहिए। एक ओर नैतिक जीवन बिताने की इच्छा उसके मन मे जागृत होती है और दूसरी ओर उसका नाजुक शरीर जो विलासिता और बेकारी का आदी होता है, जवाब दे देता है । ऊचे उठने के उसके सब प्रयास निष्फल जाते है । उसका अधिकाधिक पतन होता है । अपने आपको भूलने के लिए वह शराब पीने लगता है, जुआ खेलता है, चोरी करता है और अन्त मे पागल हो जाता है अथवा आत्महत्या कर लेता है ।

आजकल धनिक वर्ग के बालको को जैसी शिक्षा दी जाती है, उस पर किसी भी व्यक्ति को वेदना हुए बिना नहीं रह सकती। इन बालको मे इनके माता-पिता, खासकर माताये, जो अवगुण और बुराइयाँ भर रहे है,उन्हे निष्ठुर से निष्ठुर शत्रु भले ही भरना पसन्द करे। यदि हमको इस बात का पता हो कि माता पिता द्वारा भली प्रकार तबाह किये जाने वाले बालको की आत्माओ मे क्या हो रहा है तो हम इस दृश्य को और इससे भी अधिक इसके परिणामो को देख कर स्तम्भित रह जायेगे। उनमे ऐसे समय नजाकत की आदते डाली जाती है जब वे उनके नैतिक महत्व को नही समझ पाते। सादगी और आत्म-सयम की केवल उपेक्षा ही नही की जाती बल्कि पुराने जमाने की शिक्षण-पद्धति के सर्वथा विपरीत इस गुण को पूर्णत कुठित कर दिया जाता है। न तो मनुष्य को काम करने की शिक्षा दी जाती है और न उसमे वे गुण विकसित किए जाते है जो उपयोगी श्रम के लिए आवश्यक होते है अर्थात् मन की एकाग्रता, कठिन परिश्रम, सहनशीलता, कार्य के लिए उत्साह, बिगडे हुए काम को बनाने की योग्यता, कार्य के सफल होने पर प्रसन्नता अनुभव करने की शक्ति आदि। बल्कि उसे आलस्य की और श्रम द्वारा तैयार होने वाली चीजो को तुच्छ समझने की शिक्षा दी जाती है। वह यह नही सोचता कि चीजे किस प्रकार तैयार होती है वह तो चीजो को खराब करता रहता है, फेक देता है और पैसा खर्च करके चाहे जैसी फिर चीजे खरीद लेता है। विवेक प्रारम्भिक सद्गुण है, अन्य सद्गुण प्राप्त करने के लिए उसकी अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है, किन्तु मनुष्य यह सद्गुण नही प्राप्त कर सकता। उसे असमर्थ बना दिया जाता है। उसे ऐसी दुनिया मे खुला छोड दिया जाता है जहा लोग त्याग मानव सेवा और प्रेम के उच्च गुणो की बडाई करते है और उनका प्रचार करते है।

यदि एक नौजवान नैतिक दृष्टि से मंद और कुठित स्वभाव

वाला हो तो कोई हर्ज नही, क्योंकि वह वस्तुत उत्तम जीवन और नकली उत्तम जीवन मे भेद नही कर सकता, वह प्रचलित भ्रम की दुनिया मे सन्तुष्ट रहता है ऐसी दशा मे प्रकटत सब ठीक-ठाक चलता रहता है और कभी-कभी मृत्यु तक भी ऐसे आदमी का नैतिक अन्त करण जाग्रत नही हो पाता।

किन्तु हमेशा ऐसा नही होता। खासकर पिछले दिनो मे ऐसा वातावरण बन गया है कि इस प्रकार के जीवन की अनैतिकता का ज्ञान हुए बिना नही रहता और अनचाहे वह हृदय मे समा जाता है। वास्तविक शुद्ध नैतिकता का अधिकाधिक तकाजा होने लगता है और तब एक कष्टदायक आन्तरिक सघर्ष और मुसीबतो की शुरूआत होती है। और इसका परिणाम कुछ अपवादो को छोडकर नैतिक भावना की पराजय ही होता है।

मनुष्य यह महसूस करता है कि उसका जीवन बुरा है और उसको जड मे सुधारना चाहिए, क्योंकि जो लोग ऐसे सघर्ष मे से गुजर चुके होते है, और परास्त हो चुके होते है, चारो तरफ से उस पर हमला कर देते है, उसके इरादो को तोड डालने का प्रयत्न करते है। वे हर प्रकार से उसको यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करते है कि इस सुधार की बिल्कुल आवश्यकता नही, उत्तम जीवन का आत्म-सयम और आत्म-त्याग मे कोई वास्ता नही, ठूस-ठूस कर खाते रहने, सज-धज कर रहने, शरीर मे कुछ भी श्रम न करने और दुराचार करने के बावजूद मनुष्य बिल्कुल भला और उपयोगी हो सकता है और अधिकाश उदाहरणो मे यह सघर्ष शोचनीय ढग से समाप्त हो जाता है। या तो मनुष्य अपनी दुर्बलता के वश होकर सर्वसाधारण की राय के आगे झुक जाता है, अन्त करण की आवाज को दबा देता है, अपना समर्थन करने के लिए अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करता है और पुराना स्वच्छन्द जीवन जारी रखता है और अपने दिल मे यह समझ लेता है कि देवताओ पर श्रद्धा रखने या विज्ञान, राष्ट्र अथवा कला की उन्नति

मे सहयोग देने से उद्धार हो जायगा, या संघर्ष करता है, सहन करता है और अन्त मे पागल हो जाता है या आत्म-हत्या कर लेता है।

चारो ओर से प्रलोभनो द्वारा घिरे रहने के कारण आजकल का मनुष्य उस सत्य को क्वचित ही समझ पाता है, जो हजारो वर्ष पहले सभी विवेकशील व्यक्तियो के लिए प्रारम्भिक सत्य था और आज भी है। अर्थात् उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि बुरे जीवन को छोड दिया जाय, इसी प्रकार उच्च सद्गुणो को प्राप्त करने के लिए सबसे पहले निवृति अथवा आत्म-सयम या आत्म-त्याग की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि मनुष्य अपने क्रमिक प्रयत्नो द्वारा इस प्रारम्भिक सद्गुण को प्राप्त करने मे क्वचित ही सफल होता है।

(६)

मैने हाल ही मे निर्वासित रूसी ओगारियोफ के पत्र पढे है। ओगारियोफ उन उच्च शिक्षा-प्राप्त और प्रगतिशील पुरुषो मे थे जो सन् १८३०-४० के बीच हुए है। उन्होने ये पत्र हर्जन नाम के एक उच्च-शिक्षित और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति को लिखे थे। ओगारियोफ ने इन पत्रो मे अपने हार्दिक विचारो और उच्च आकाक्षाओ को प्रकट किया है और हम समझे बिना नही रह सकते कि जैसा एक नौजवान के लिए स्वाभाविक होता है, ओगारियोफ ने अपने मित्र के आगे अपने-आपको अच्छे रूप मे पेश करने का प्रयत्न किया है। उन्होने आत्म-साधना, पावन मित्रता प्रेम, विज्ञान तथा मानव सेवा आदि विषयो की चर्चा की है। साथ ही उन्होने बडी शान्ति के साथ यह भी लिखा है कि मै बहुधा अपनी जीवन-सगिनी को नाराज कर देता हू जब मै नशे की हालत मे घर लौटता हू अथवा एक पतित किन्तु प्रिय प्राणी के साथ घण्टो गायब रहता हू।

वस्तुत इस दयालु, प्रतिभाशाली और सुशिक्षित व्यक्ति को इस बात मे कोई बुराई ही नही मालूम हुई कि अपनी पत्नी के मौजूद होते हुए, जब कि उसके बच्चा होने वाला था, वह शराब के नशे में घर लौटा और एक भ्रष्ट औरत के साथ गायब हो गया। उसके दिमाग मे यह बात पैठ ही न पाई कि जब तक वह अपने साथ संघर्ष नही करता और शराब पीने और व्यभिचार करने की अपनी इच्छा पर कुछ अशो मे ही सही काबू नही पा लेता, तब तक वह किसी की सेवा करना तो दूर रहा; मित्रता और प्रेम की कल्पना भी नही कर सकता। किन्तु उसने न केवल इन दुर्गुणो के विरुद्ध संघर्ष ही नही छोडा, बल्कि उसका यह ख्याल रहा कि ये दुर्गुण नही, बल्कि अच्छी बाते है और आत्म-साधना मे इनके कारण कोई रुकावट पैदा नहीं होती। इसीलिए वह इनको छिपाने के बजाय अपने मित्र के आगे, जिसकी दृष्टि मे वह अच्छे रूप मे उपस्थित होना चाहता है, प्रकट कर देता है।

यह अर्द्ध-शताब्दि पहले की बात है। मै ऐसे व्यक्तियो के जमाने में रह चुका हू। मुझे ओगारियोफ और हरजन और इसी नमूने के दूसरे लोगो और इसी परम्परा मे शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियो से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला था। इन सभी लोगो के जीवन में उल्लेखनीय विषमता थी। एक ओर तो उनमे सद्जीवन की हार्दिक और उत्कट इच्छा थी और दूसरी ओर उनकी व्यक्तिगत इच्छाओ पर कोई लगाम न थी। उनके ख्याल से असयत जीवन श्रेष्ठ जीवन के मार्ग मे कोई रुकावट नही डाल सकता और न अच्छे और महान कार्य करने में बाधक हो सकता है। वे बिना गूंदे हुए आटे की रोटिया सर्द चूल्हे में रखकर यह आशा करते थे कि उन्हे पकी हुई रोटी प्राप्त हो जायगी और जब उम्र बढने के साथ वे यह कहते कि रोटी तो पकी नहीं, अर्थात् उनके जीवन का सद्परिणाम नहीं निकला, तो उन्हे इसमे एक खास किस्म का दुखान्त सयोग प्रतीत होता।

और वस्तुत ही ऐसी जिन्दगियो की दुखान्त समाप्ति भयकर होती है और जो दुखान्त सयोग इरजन, ओगारियोफ और उनके समय के दूसरे व्यक्तियो के जीवन मे पाया जाता है, वही आज के बहुत से कथित पढे-लिखे लोगो के जीवन मे पाया जाता है, जो कि उनके जैसे ही विचार रखते है। एक मनुष्य सद्जीवन बिताना चाहता है, किन्तु इसके लिए जो क्रमबद्धता आवश्यक होती है, वह उस समाज मे खो जाती है, जिसमें कि वह रहता है। जैसा कि पचास वर्ष पहले ओगारियोफ इरजन और दूसरे लोगो का विचार था उसी के अनुसार इस जमाने के अधिकाश लोगो को यह यकीन दिलाया जाता है कि विलासी जीवन बिताने, मीठे और गरिष्ठ पदार्थ खाने, हर प्रकार से आनन्द भोगने और अपनी समस्त इच्छाओ को सन्तुष्ट करने आदि की चेष्टाये सद्जीवन बिताने के मार्ग मे बाधक नही होती। किन्तु जैसा कि प्रकट है, उनको सद्जीवन नसीब नही होता और तब वे निराश होकर कहते है—मानव जीवन का दुखान्त सयोग ऐसा ही है।

इस विषय मे एक और विचित्र बात है। यह सब जानते है कि मनुष्यो मे सुख साधनो का बटवारा समान नही है। वे इस विषमता को बुरा समझते है और इसको ठीक करना चाहते है किन्तु अपने सुख-साधनो मे वृद्धि करने अर्थात् सुख-साधनो के विषम विभाजन मे वृद्धि करने के प्रयत्न नही छोडते। उनके इस व्यवहार की तुलना उन लोगो के व्यवहार से की जा सकती है जो एक बगीचे मे पहले घुस पडते है और जितनी जल्दी हो सके सब फल अपने ही लिए इकट्ठे करने की कोशिश करते है। एक ओर तो वे पहले और बाद मे आने वालो के बीच बगीचे के फलो का अधिक समान विभाजन करना चाहते है और दूसरी ओर अपने बस भर सब फलों को अपने लिए तोडते रहते है।

[७]

मनुष्य अपनी वासनाओ की पूर्ति मे लगे रहे और इस वासना
जीवन को अच्छा समझे और साथ ही वे यह समझते रहे कि वे अच्
उपयोगी, न्याय तथा प्रेम-पूर्ण जीवन बिता सकते है, यह एक
आश्चर्यकारक भ्रम है कि मेरे ख्याल से आने वाली पीढियाँ यह सम
ही न पायेगी कि इस जमाने के लोगो का 'उत्तम जीवन' मे क
तात्पर्य था, जब धनिक वर्गो के ठूस ठूस कर खाने वाले विलासी औ
कामुक लोगो के लिए यह कहा जाता था कि वे उत्तम जीवन बित
है। सच बात तो यह है कि यदि कोई केवल हमारे धनिक व
के जीवन के परम्परागत दृष्टिकोण को क्षण भर के लिए एक अ
रख दे और—मै नही कहता धार्मिक दृष्टिकोण से विचार करे, बल्कि
न्याय की अति साधारण व्यवस्था को सामने रखकर विचार करे तो उ
यकीन हो जायगा कि न्याय अथवा औचित्य के स्पष्टतम नियमो
अवहेलना करते हुए, जैसी अवहेलना करना बच्चे खेल तक
ठीक नही समझते, हम धनिक वर्गो के लोगो को उत्तम जीवन की चर्चा
करने का कोई अधिकार नही है।

हमारे समाज का कोई भी आदमी जो उत्तम जीवन बिताने की
शुरुआत करना चाहे—नही, नही उत्तम जीवन बिताने की दिशा
थोडा भी आगे बढने की ओर प्रवृत्त हो, उसके लिए यह आवश्य
है कि वह सबसे पहले बुरा जीवन व्यतीत करना त्याग दे, दुष्ट जीव
के उस वातावरण को ही नष्ट कर दे जिसके बीच वह घिरा हुआ
रहता है।

हम अपने जीवन मे सुधार न करने के लिए बहुधा यह दलील
सुनते है कि जिस प्रकार का जीवन हम बिताते आये है, उससे विपरी
कोई भी काम अस्वाभाविक और हास्यास्पद होगा। हमारी दिखाव
पन की इच्छा का द्योतक होगा—और इसलिए सत्कार्य न हो

प्रतीत होता है यह दलील इसलिए जान-बूझकर गढी गई है कि लोग अपने बुरे जीवन मे परिवर्त्तन ही न कर पाये। यदि हमारा समस्त जीवन अच्छा, न्यायपूर्ण और दयालु हो, तभी सामान्य जीवन-पद्धति के अनुकूल होने वाला कार्य सत्कार्य हो सकता है। यदि हमारा आधा जीवन अच्छा हो और शेष आधा जीवन बुरा, तो सामान्य जीवन-पद्धति के प्रतिकूल पड़ने वाला कार्य अच्छा हो भी सकता है और नही भी। उस कार्य के अच्छे या बुरे होने की बराबर-बराबर सम्भावना रहती है। किन्तु यदि जीवन सर्वथा बुरा और गलत हो, जैसा कि उच्च श्रेणियो का होता है, तो मनुष्य जीवन की सामान्य धारा के विपरीत गये बिना कोई अच्छा काम कर ही नही सकता। जीवन-धारा के अनुसार चलकर वह बुरा काम तो कर सकता है किन्तु अच्छा काम नही कर सकता।

जो मनुष्य हमारे धनिक वर्गो के जीवन का अभ्यस्त हो, वह जब तक बुरे वातावरण मे, जिसमे वह डूबा रहता है, बाहर नही निकलता, तब तक उत्तम जीवन नही बिता सकता, जब तक वह बुराई करना नही छोड देता, तब तक अच्छाई करना शुरू नही कर सकता। यह असम्भव है कि मनुष्य भोग-विलास मे रह-रहकर सत्यतापूर्ण जीवन बिता सके। जब तक वह अपने जीवन मे परिवर्तन नही करता, सत्य की ओर जाने वाली पहला सीढी पर पैर नहीं धरता, तब तक सद्-जीवन के लिए वह जो भी प्रयत्न करेगा, सब निष्फल जायेंगे। पौराणिक और इससे भी अधिक ईसाई मतानुसार उत्तम जीवन को एक ही तरीके से नापा जा सकता है। उसे हम गणित का तरीका कह सकते है। हमे यह देखना होगा कि मनुष्य खुद को कितना प्रेम करता है और दूसरो को कितना। हम खुद को हो जितना कम प्रेम करेंगे, अपने लिए कम चिन्ता करेंगे और अपने स्वार्थ के लिए दूसरो के श्रम का कम उपयोग करेंगे तथा दूसरो से जितना अधिक प्रेम करेंगे, दूसरो की जितनी चिन्ता करेंगे, उनके लिए परिश्रम करेंगे, उतना ही

हमारा जीवन उत्तम होगा।

संसार के सभी सन्तों ने अच्छाई का यही अर्थ समझा है, सभी सच्चे धार्मिक पुरुष ऐसा ही मानते हैं और आज जन-साधारण भी उसका ठीक यही अर्थ करते हैं। मनुष्य जितना ही अधिक दूसरों को देता है और दूसरों से जितना ही कम अपने लिए चाहता है, उतना ही वह श्रेष्ठ होता है। इसके विपरीत जितना ही कम वह दूसरों को देता है और अपने लिए अधिक चाहता है, उतना ही वह बुरा होता है।

जो मनुष्य दूसरों के लिए अपने दिल में अधिक-से-अधिक प्रेम-भावना रखता है और अपनी खुद की ओर से उदासीन रहता है, वह न केवल नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ हो जाता है, बल्कि वह अपनी जितनी ही कम चिन्ता करता है उतना ही उसके लिए श्रेष्ठ बनना सुगम होता है। इसके विपरीत जो मनुष्य अपने को जितना ही अधिक प्रेम करता है और फल-स्वरूप दूसरों से जितनी ही अधिक सेवा लेता है उतनी ही उसके लिए दूसरों से प्रेम करने और उनकी सेवा करने की कम सम्भावना होती है और यह सम्भावना उतने ही अंशों में कम नहीं होती जितने अंशों में कि हमारी अपने प्रति प्रेम की मात्रा बढ़ी हुई होती है, बल्कि वह उससे कहीं अधिक कम हो जाती है। जिस प्रकार कि यदि हम वजन करने के काँटे को लम्बे सिरे से छोटे सिरे की ओर चलावें, तो इसके फलस्वरूप लम्बा डंडा न केवल लंबा न होगा, बल्कि छोटा और भी छोटा हो जायगा। इसी प्रकार यदि किसी आदमी में प्रेम करने का गुण है और वह अपने आप से ज्यादा प्रेम करने लगता है, अपनी ज्यादा फिक्र करता है, तो दूसरों से प्रेम करने और दूसरों की चिन्ता करने की उसकी शक्ति कम हो जायगी न केवल उतनी मात्रा में जितनी मात्रा में कि उसने अपने प्रति अपना प्रेम बढ़ाया होगा, बल्कि उससे कहीं अधिक मात्रा में उसकी परसेवा की शक्ति कम हो जायगी। एक मनुष्य दूसरों को खिलाने के बजाय खुद बहुत अधिक खा लेता है। इस प्रकार वह बचा हुआ भोजन

दूसरो को देने की सम्भावना को ही कम नही करता। बल्कि, ज्यादा खा लेने से, दूसरो की मदद करने की अपनी शक्ति भी खो बैठता है।

दूसरो को केवल शब्दो द्वारा नही बल्कि वस्तुत प्रेम करने के लिए मनुष्य को अपने से प्रेम करना छोडना होगा, केवल शब्दों द्वारा ही नही बल्कि वास्तव मे भी। बहुत से उदाहरणो मे होता यह है कि हम समझते है, हम दूसरो से प्रेम करते है। हम खुद भी ऐसा मान बैठते है और दूसरो को भी ऐसा ही यकीन दिलाते है, किन्तु वास्तव मे दूसरो के प्रति हमारा प्रेम शब्दो तक ही सीमित होता है, जबकि हम अपने आपको वस्तुत प्रेम करते है। दूसरो को भोजन खिलाना या आश्रय देना हम भूल जाते है, किन्तु अपने लिए भोजन और आश्रय प्राप्त करना कभी नही भूलते। अत दूसरो को सचमुच प्रेम करने के लिए हमको वस्तुत अपने आपको प्रेम करना भूलना होगा, जिस प्रकार हम दूसरो को भोजन कराना और आश्रय देना भूल जाते है, उसी प्रकार हमको खुद को भोजन करना और सोना भूल जाना पडेगा।

हम विलासी जीवन बिताने के अभ्यस्त स्व-भोगी व्यक्ति के लिए कहते है कि वह अच्छा आदमी है और उत्तम जीवन बिताता है। किन्तु ऐसा व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष और चाहे उनमे चरित्र-शीलता के कितने ही अच्छे गुण, नम्रता, अच्छा स्वभाव आदि क्यो न हो, अच्छा आदमी नही हो सकता और न अच्छा जीवन बिता सकता है, जिस प्रकार कि चाकू को जब तक धार न लगाई जाय, वह बढिया से बढिया धातु का और श्रेष्ठतम कारीगर के हाथो बना होने पर भी तेज नही हो सकता। अच्छा आदमी बनने और अच्छा जीवन बिताने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य जितना दूसरो से ग्रहण करे, उससे अधिक उन्हे लौटा दे। किन्तु स्व-भोगी मनुष्य जो विलासी जीवन का अभ्यस्त होता है, ऐसा ही नहीं कर सकता। इसका पहला कारण तो यह है कि हमेशा उसको अपने लिए खूब सारे पदार्थों की

जरूरत रहती है (यह उसकी स्वार्थपरता के कारण नहीं होता, बल्कि इसलिए होता है कि वह भोग-विलास का अभ्यस्त होता है और जिन पदार्थों का वह अभ्यस्त होता है उनसे वञ्चित रहना उसको कष्टकर प्रतीत होता है)। दूसरे, वह अन्य लोगों से कुछ प्राप्त करता है, उस सबका उपयोग करके अपने-आपको कमजोर और काम करने के अयोग्य बना लेता है और इस प्रकार दूसरों की सेवा करने में असमर्थ हो जाता है। एक स्वय-भोगी मनुष्य, जो देर तक कोमल शय्या पर सोता है, गरिष्ठ और मिष्ट पदार्थों का सेवन करता है, हमेशा स्वच्छ और वायुमान के अनुकूल कपडे पहनता है, कभी मेहनत का काम नहीं करता, वह कुछ नहीं कर सकता।

हम अपने झूठ और दूसरों के झूठ के इतने अभ्यस्त होते हैं और दूसरों के झूठ को न देखना हमारे लिए इतना सुविधाजनक होता है ताकि वे हमारे झूठ को न देख सकें और जो लोग सर्वथा असयत जीवन बिताते हैं, वही जब गुण-सम्पन्नता और कभी-कभी पवित्रता का दावा करते हैं तो हमको जरा भी आश्चर्य नहीं होता और हम उनके दावों की सत्यता में शका नहीं करते।

एक आदमी है जो स्प्रिंगदार पलग पर सोता है। उस पर दो गद्दे, गद्दों पर दो नरम, स्वच्छ चादर और खोलीदार तकिये पड़े होते हैं। पलग के पास ही एक चटाई पड़ी रहती है ताकि बिछौने पर से उतरने पर पाँव ठण्डे न हों, हालाँकि चप्पल जोडी भी पास ही धरी हुई रहती है। यहीं आवश्यक बर्तन रक्खे रहते हैं ताकि उसे मकान से बाहर न जाना पड़े। जो कुछ गन्दगी वह करता है, वह उठा ली जाती है और सब साफ-सुथरा बना दिया जाता है। खिड़कियों पर पर्दे पड़े रहते हैं ताकि धूप उसको जगा न सके। वह जब तक इच्छा होती है, सोता रहता है। इस सब के अलावा ऐसे उपाय किये जाते हैं, ताकि कमरा सर्दी में गरम और गर्मी में सर्द रहे और मक्खियों और कीट पतगों के शोर से उसकी शान्ति भग न हो। वह सोता होता है, तभी उसके हाथ मुँह धोने और कभी-कभी नहाने के

लिए ठण्डा और गर्म पानी और हजामत बनाने का सामान तैयार कर लिया जाता है । चाय और कहवा भी बना लिया जाता है, क्योकि उठते ही स्फूर्तिदायक पेय की जरूरत होती है । बूट, जूते आदि जो पिछले दिन धूल मे भर जाते है, पहले ही साफ कर लिये जाते है । धूल का एक कण भी उन पर बाकी नही रहता और वे काच की भाँति चमकने लगते है । इसी प्रकार दूसरे पहनने के कपडो को भी, जो पिछले बिगड चुके होते है, साफ किया जाता है । इन कपडो की बनावट न केवल सर्दी और गर्मी, बल्कि वसन्त, पतझड, वर्षा, शीत और ग्रीष्म आदि सभी ऋतुओ के अनुकूल होती है । साफ कपडा धोकर, कलफ लगा कर और इस्तरी चढाकर तैयार रखा जाता है । बटन, बटन के छेद, आदि ठीक है या नही, इस बात को खास तौर पर नियुक्त लोग पहले ही देख लेते है ।

यदि वह आदमी क्रियाशील हुआ तो वह प्रातःकाल जल्दी—७ बजे उठ जाता है । उसके जागने का समय उन लोगो से दो-तीन घण्टे बाद होता है जो उसके लिए यह सब तैयारियां करते रहते है । दिन मे पहनने के कपडो और रात को ओढने के कपडो के अलावा कपडे पहनने के समय काम मे आने वाले कपडे और जूते अलग होते है । उठने के बाद वह अपनी सफाई करना शुरू करता है । वह कई प्रकार के ब्रुश, साबुन और भारी मात्रा म पानी का उपयोग करता है । (कुछ स्त्री-पुरुष अत्यधिक मात्रा मे साबुन और पानी इस्तेमाल करने मे खास गौरव अनुभव करते है ।) इसके बाद वह पोशाक पहनता है, एक खास दर्पण के सामने बालो को सवारता है । यह काच उन काचो से भिन्न होता है जो उसके कमरे के हर कोने मे टगे हुए होते है । फिर वह अपनी आवश्यकता की चीजे चश्मा आदि लेता है अलग-अलग जेबो मे अलग-अलग चीजे रखता है । एक जेब मे नाक साफ करने के लिए साफ-सुथरा जेबी रुमाल रखता है दूसरी

मे जजीर वाली घडी डालता है, हालाकि हर कमरे मे जहा भी उसे जाना होता है घडी मौजूद होती है, नोट, रुपया और रेजगी लेता है। (बहुधा रेजगी वह खास किस्म की डिब्बी मे रखता है, ताकि आवश्यक सिक्का निकालने मे उसे कष्ट न हो, चेक बुक भी वह साथ रखता है, अपने नाम के छपे हुए कार्ड भी उसके पास रहते है, ताकि उसे अपना नाम बताने का कष्ट न करना पडे। पाकेट बुक और पेसिल लेना भी वह नही भूलता। औरतो के नहाने-धोने का काम तो और भी पेचीदा होता है। उन्हे अपने आपको सवारने के लिए अनेक प्रकार की चीजो की आवश्यकता होती है।)

अन्त मे साज शृगार समाप्त हो जाता है और आम तौर पर खाने के साथ दिन की शुरुआत होती है। चाय और कहवा बहुत सारी शक्कर मिलाकर पिये जाते है। बढिया से बढिया सफेद आटे की बनी हुई रोटी मक्खन की भारी मात्रा के साथ खाई जाती है। कभी-कभी अण्डे, मास आदि का भी सेवन किया जाता है। पुरुष इस बीच मे अधिकतर सिगार या सिगरेट पीते और ताजा खरीद कर लाये हुए समाचार पत्र पढते है। इसके बाद गन्दे और अव्यवस्थित बने कमरे को ठीक करने का भार दूसरो पर छोड कर दफ्तर या काम-धन्धे पर जाते है अथवा ऐसी गाडियो मे निकल पडते है जो ऐसे लोगो को इधर-उधर ले जाने के लिए खास तौर पर बनाई जाती है। इसके बाद कत्ल किय जानवरो, पक्षियो और मछलियो का उपयोग होता है फिर दुपहर का भोजन होता है इसमे यदि वह बहुत साधारण हुआ तो भी तीन दौर होते है। फिर स्प्रिगदार नरम आराम कुर्सियो मे बैठकर ताश खेला जाता है, सगीत सुना जाता है, नाटक देखा जाता है पढा जाता है और या बातचीत की जाती है। मोमबत्ती, गैस, और बिजली की केन्द्रित और आवरण युत रोशनी जलती रहती है। इसके बाद फिर चाय का, सायकाल के खाने का और सोने का नम्बर आता है। बिछौना झाड-झू कर

साफ कर दिया जाता है और बर्तनभी पुन गन्दे किए जाने के लिए धो-धाकर रख दिए जाते है।

साधारण जिन्दगी बिताने वाले के दिन इस प्रकार गुजरते है। यदि वह अच्छे स्वभाव का हो और उसमे कोई ऐसी आदत न हो जो उसके इर्द-गिर्द रहने वालो को बुरी मालूम दे तो यह कहा जाता है कि यह आदमी उत्तम और सद्गुणी जीवन व्यतीत करता है।

किन्तु उत्तम जीवन उसी मनुष्य का होता है जो दूसरो की भलाई करे, पर जो मनुष्य इस प्रकार रहने का अभ्यस्त हो क्या वह दूसरो का भला कर सकता है? मनुष्यो का भला करने के पहले उसे बुराई करना छोडना पडेगा। आप अन्दाज लगावे कि ऐसा मनुष्य, बहुधा अनजाने, दूसरो को कितनी हानि पहुचाता है और आपको मालूम होगा कि वह भलाई करने से कोसो दूर है। वह जो बुराई करता है उससे छुटकारा पाने के लिए उसे अनेक वीरतापूर्ण काम करने पडेगे, किन्तु अपने वासना-परिपूर्ण जीवन के कारण वह ऐसे काम करने मे अति असमर्थ बन जाता है। वह अपना लम्बा कोट पहने फर्श पर नैतिक और शारीरिक दृष्टि से अधिक आराम की नींद सो सकता है और इस प्रकार गद्दे, स्प्रिग और तकिये बनाने मे जो श्रम और कष्ट होता है उसकी बचत कर सकता है, कपडे धोने वाली नौकरानी के श्रम की भी बचत कर सकता है जो बच्चे पैदा करने और उनका लालन पालन करने के बोझ के नीचे दबी होती है। जल्दी सोकर और जल्दी जाग कर वह खिडकियो के पर्दो और लैम्प का खर्च बचा सकता है। जो कमीज वह दिन में पहनता है, उसी को पहने हुए रात मे सो सकता है फर्श पर नगे पाव चल सकता है और टट्टी पेशाब के लिए चौक मे जा सकता है। नल पर हाथ पाव धो सकता है। एक शब्द में कहे तो वह ठीक उन्हीं की तरह रह सकता है जो उसकी सेवा करते है और इस प्रकार इन सब कामो की बचत कर सकता है जो उसके लिए किए जाते है। उसके कपडो बढिया

भोजन और मनोरंजन पर जो श्रम खर्च होता है, उसे वह बचा सकता है और वह यह जानता है कि किन परिस्थितियों में यह श्रम होता है, उसको करने में किस प्रकार मनुष्य नष्ट होते हैं, कष्ट उठाते हैं और बहुधा उन लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं जो उनकी गरीबी का लाभ उठाकर उनको काम करने के लिए विवश करते हैं।

ऐसी दशा में वह मनुष्य अपने भोग-विलासमय जीवन को तिलांजलि दिये बिना किस प्रकार दूसरों का भला कर सकता है, सद्जीवन व्यतीत कर सकता है?

किन्तु दूसरे लोग हमारी नजरों में कैसे लगते हैं, इसका जिक्र हम छोड़ दें। हमको तो खुद अपनी ही ओर देखना और विचार करना चाहिए।

मैं इस एक ही बात को बार-बार दुहराऊंगा, चाहे लोग मेरे शब्दों के प्रति उदासीनता और विरोध-सूचक मौन का ही परिचय क्यों न दें? एक नीतिमान मनुष्य, जो आराम की जिन्दगी गुजारता है, वह और मध्यम वर्ग का आदमी भी निश्चिन्त होकर नहीं बैठ सकता, (मैं उच्च वर्गों के व्यक्तियों का जिक्र नहीं करूंगा, जो अपनी मनमानी इच्छाओं को पूरा करने के लिए नित्य सैकड़ों दिनों के परिश्रम का फल हड़प कर जाते हैं।) क्योंकि वह जानता है कि जिन पदार्थों का वह उपभोग करता है, वे पददलित श्रमजीवियों के श्रम से तैयार होते हैं। ये श्रमजीवी, जो अज्ञानी, शराबी, व्यभिचारी और असभ्य जीव होते हैं, खानों, कारखानों और खेतों में काम करते हैं और उसके उपयोग में आने वाले पदार्थों का उत्पादन करते हैं।

इस क्षण जो मैं लिख रहा हूं और आप जो इसको पढ़ेंगे—आप कोई भी क्यों न हों—आप और मैं दोनों स्वास्थ्यकर, पर्याप्त और सम्भवतः विपुल और स्वादिष्ट भोजन पाते हैं। हमें सांस लेने के लिए शुद्ध और गर्म हवा मिलती है, हमारे पास सर्दी और गर्मी के

कपडे हैं, मनोरंजन के विविध साधन उपलब्ध है और इन सबसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारे पास दिन मे अवकाश है और रात मे हम चैन की नीद सो सकते है। और यहीं, हमारी बगल मे ऐसे श्रमजीवी लोग रहते हैं, जिन्हे न तो स्वास्थ्यकर भोजन मिलता है और न स्वास्थ्यकर मकान, न काफी कपडे मिलते है और न मनोरंजन के साधन ही नसीब होते है, और जो न केवल अवकाश से ही बल्कि आराम से भी वंचित रहते है। वृद्ध, बालक और स्त्रिया जो श्रम, निद्रारहित रातो और रोग के कारण जर्जर हो चुके है, वे हमारे लिए आराम और विलास की वे चीजे तैयार करने मे अपने जीवन खपा देते है जो उन्हे कभी नसीब नही होती और जो हमारे लिए आवश्यक नही बल्कि और जरूरी होती है। इसलिए एक नीतिमान मनुष्य जो ईसाई भी न हो लेकिन जो मानवी दृष्टि-कोण रखता हो या केवल न्याय की कद्र करता हो, अपने जीवन मे जरूर ही परिवर्तन करना चाहेगा और ऐसी परिस्थितियो मे तैयार होने वाली चीजो का उपयोग करना बन्द कर देगा।

यदि एक आदमी के दिल मे वास्तव मे उन लोगो के प्रति दया की भावना पैदा होती है, तो स्वभावत वह पहली बात यह करेगा कि तम्बाकू पीना बन्द कर देगा, क्योकि यदि वह तम्बाकू खरीदना और पीता रहेगा, तो वह तम्बाकू बनाने के काम को प्रोत्साहन देगा जिससे कि मनुष्यो का स्वास्थ्य नष्ट होता है। अन्न पैदा करने मे जो कठोर परिश्रम करना पडता है, उसके बावजूद अगर मनुष्य रोटी खाना जारी रखता है तो इसकी वजह यह है कि वह श्रम की परिस्थितियो के बद-लने की प्रतीक्षा मे, जो अनिवार्य है उसे नहीं छोड सकता। लेकिन जो चीजे न केवल जरूरी ही नहीं होती, बल्कि गैर-जरूरी होती है उनके बारे मे इसके अलावा और कोई परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि यदि मै अमुक चीजो को बनाने के काम मे लगे हुए लोगो की हालत पर तरस खाता हू तो मुझे किसी भी दशा मे उन चीजो को काम मे लेने

की आदत नही डालनी चाहिए ।

किन्तु आज कल लोग दूसरे ही ढग की बहस करते है । वे तरह-तरह की और पेचीदा दलीले गढ लेते है, किन्तु उस बात का जिक्र तक नही करते, जो हरेक साधारण आदमी को स्वभावत समझ मे आ जाती है । इन लोगो के अनुसार विलासात्मक पदार्थो से दूर रहने की कोई आवश्यकता नही । एक आदमी श्रमजीवियो की दशा के प्रति सहानुभूति रख सकता है, उनके पक्ष में भाषण दे सकता है, पुस्तके लिख सकता है और साथ ही उस श्रम से लाभ भी उठाता रह सकता है जो उसकी जानकारी मे उन्हे बर्बाद करता रहता है ।

एक दलील तो यह है कि मै उस श्रम से जो श्रम-जीवियो के लिए हानिकर है, लाभ उठा सकता हू, कारण यदि मै न उठाऊगा तो दूसरे उठायेगे । यह तो ऐसी ही दलील हुई कि शराब मेरे लिए हानिकर है, फिर भी मुझे उसे पीना चाहिए, क्योकि वह खरीद ली गई है और यदि मै उसे न पीऊगा, तो दूसरे लोग उसे पीयेगे ।

दूसरी दलील यह है कि भोग-विलास की चीजे बनवाने से श्रम-जीवियो को ही लाभ पहुचता है, कारण इस तरह हम उनके लिए पैसा अर्थात् आजीविका सुलभ करते है । मानो हमारे पास उन्हे आजी-विका देने का इसके सिवा और कोई तरीका नही है कि हम उनसे ऐसी चीजे तैयार कराये जो उनके लिए तो हानिकर हो और हमारे लिए अनावश्यक ।

किन्तु एक तीसरी दलील और है और यह आज कल बहुत प्रच-लित है । मानो श्रम का विभाजन हो चुका है और मनुष्य जिस भी काम मे लगा हुआ है, चाहे वह सरकारी नौकर हो, पण्डा पुजारी हो, जमीदार हो, कारखानेदार हो, अथवा व्यापारी हो, वह इतना उपयोगी है कि उससे श्रमजीवियो के उस श्रम की पूरी तरह पूर्ति हो जाती है जिससे वह लाभ उठाता है । एक राज्य-सेवा करता है, दूसरा मन्दिर मे पूजा करता है, तीसरा विज्ञान की, चौथा कला की, और पाँचवा

उन लोगों की सेवा करता है जो राज्य, विज्ञान और कला की सेवा करते हैं और सब को इस बात का दृढ़ विश्वास होता है कि वे मानव जाति को जो कुछ देते हैं उसके द्वारा वे जो कुछ लेते हैं उसकी बिला शक पूर्ति हो जाती है। और यह आश्चर्य की बात है कि किस प्रकार अपने कार्यों में वृद्धि किये बिना और अपनी भोग विलास की जरूरतें बराबर बढ़ाते रह कर ये लोग यह मानते रह सकते हैं कि वे जो कुछ करते हैं, उससे वे जो कुछ उपयोग करते हैं उसकी पूर्ति हो जाती है।

किन्तु यदि आप इन लोगों का एक दूसरे के बारे में निर्णय सुनें तो आपको प्रतीत होगा कि हरेक व्यक्ति जितना उपयोग करता है उससे कहीं कम का अधिकारी है। सरकारी कर्मचारी कहते हैं कि जमींदार जितना खर्च करते हैं उतनी कीमत का उनका काम नहीं होता। जमींदार व्यापारियों के बारे में और व्यापारी सरकारी कर्मचारियों के बारे में यही कहते हैं। किन्तु इससे उनको कुछ बाधा नहीं पहुंचती और वे लोगों को यह यकीन दिलाते रहते हैं कि उनमें से हरेक जितनी लोगों की सेवा करता है उसी के अनुपात में दूसरे लोगों के श्रम से लाभ उठाता है। यह अदायगी काम से नहीं नापी जाती, किन्तु काल्पनिक कामों का मूल्य अदायगी के रूप में आंका जाता है। इस तरह वे एक दूसरे को यकीन दिलाते हैं किन्तु वे अपने दिल के भीतर अच्छी तरह से जानते हैं कि उनकी सारी दलीलों से भी उनका समर्थन नहीं होता, वे श्रमजीवियों के लिए आवश्यक नहीं हैं और वे जो इन लोगों के श्रम का लाभ उठाते हैं, वह श्रम विभाजन के कारण नहीं, बल्कि इसलिए है कि उनके पास ऐसा करने की शक्ति है और वे इतने बिगड़ चुके हैं कि उसके बिना उनका काम चलता ही नहीं।

यह सब गड़बड़ इसलिए पैदा होती है कि लोग यह समझ लेते हैं कि उत्तम जीवन के लिए आवश्यक प्रारम्भिक गुण हासिल किये बिना उत्तम जीवन बिताया जा सकता है। और वह पहला गुण है—आत्म-संयम।

[८]

आत्म-सयम के बिना न तो उत्तम जीवन कभी सम्भव हुआ है और न हो सकता है। आत्म-सयम से पृथक उत्तम जीवन की कल्पना ही नही की जा सकती। श्रेष्ठता की प्राप्ति का इसीमे प्रारम्भ होना चाहिए।

सद्गुणो का एक स्तम्भ होता है और यदि कोई उसके शिखर पर पहुचना चाहे तो उसको नीचे से नीचे वाली सीढी से चढना प्रारम्भ करना चाहिए, और यदि मनुष्य अन्य सद्गुणो को प्राप्त करना चाहे तो उसे पहला गुण आत्म-सयम अथवा सादगी को अपनाना चाहिए।

ईसाई धर्म मे आत्म-त्याग की कल्पना मे ही आत्म-सयम का समावेश कर लिया गया था, फिर भी अन्य गुणो का सिलसिला नही रहा, और आत्म-सयम के बिना कोई भी अन्य ईसाई सद्गुण प्राप्त नही किया जा सकता। ऐसा इसलिए नही है कि किसी ने यह नियम गढा है, बल्कि इसलिए है कि स्थिति मूलत ऐसी ही है।

किंतु आत्म-सयम भी, जो कि सद्जीवन की पहली सीढी है, एकदम नही बल्कि क्रमश ही प्राप्त किया जा सकता है।

आत्म-सयम का अर्थ है मनुष्य का वासनाओ से मुक्त होना, वासनाओ को सीमित और सरल बनाना। किन्तु मनुष्य की वासनाये अनेक और विविध होती है और उनका सफलतापूर्वक सामना करने के लिए मनुष्य को मौलिक वासनाओ को, जिनके आधार पर कि जटिल वासनाये उत्पन्न होती है, पहले चुनौती देना चाहिए। उन जटिल वासनाओ को उसे पहले नहीं छेडना चाहिए जो मौलिक वासनाओ पर खडी होती है। कुछ तो जटिल वासनाये होती है जैसे कि शरीर को सवारना, खेल-कूद, मनोरजन गपशप, पराई चर्चा आदि आदि और कुछ मौलिक वासनायें होती है जैसे अति मात्रा मे भोजन करना, आलस्य और काम-वासना आदि। और मनुष्य को इन वासनाओ का

प्रारम्भ से ही सामना करना चाहिए, जटिल वासनाओ का नही, बल्कि मौलिक वासनाओ का, और यह सामना भी एक निश्चित क्रम से करना चाहिए। और यह क्रम तथ्यो के स्वरूप और मानव-विवेक की परम्परा दोनो ही के द्वारा निर्धारित होता है।

जो मनुष्य अत्यधिक खाता है, वह आलस्य से नही लड सकता और अति-पेटू आलसी मनुष्य काम-वासना का कभी भी सामना नही कर सकता। इसलिए सभी नैतिक शिक्षाओ के अनुसार आत्म-सयम की दिशा मे आगे बढने के लिए मनुष्य को सबसे पहले जीभ की वासना से सघर्ष शुरू करना चाहिए, व्रत-उपवास से शुरुआत करनी चाहिए। किन्तु हमारे जमाने मे लोगो ने श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रत्येक गम्भीर साधन को इतने अर्से से और इस पूरी तरह गवा दिया है कि पहला सद्गुण—आत्म-सयम, जिसके बिना और कोई सद्गुण प्राप्त नही किया जा सकता, न केवल अनावश्यक समझा जाता है, बल्कि उस क्रम की भी उपेक्षा की जाती है जो इस प्रथम सद्गुण को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। व्रत-उपवासो को बिल्कुल भुला दिया जाता है अथवा मूर्खतापूर्ण अन्ध-विश्वास और सर्वथा अनावश्यक समझा जाता है।

यह सब होने पर भी आत्म-सयम सद्जीवन की पहली शर्त है, उसी प्रकार व्रत-उपवास सयमित जीवन की पहली शर्त है।

बिना व्रत-उपवास किये मनुष्य उत्तम बनने की इच्छा कर सकता है, श्रेष्ठता के स्वप्न देख सकता है, किन्तु व्रत-उपवास किये बिना श्रेष्ठ पुरुष बन सकना ठीक उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार कि मनुष्य अपने पावो पर खडे हुए बिना आगे नही बढ सकता।

व्रत-उपवास सद्जीवन की पहली अनिवार्य शर्त है, इसके विपरीत अति मात्रा मे भोजन करना, हमेशा बुरे जीवन का पहला चिन्ह माना गया है और है भी। और दुर्भाग्य की बात यह है कि हमारे जमाने के अधिकाश मनुष्यो मे बहुत बडी मात्रा मे यह दुर्गुण पाया जाता है।

आप अपने आस-पास के और अपने समय के मनुष्यो को देखिये, आपको लटके हुए गालो और ठुड्डियो वाले चेहरो पर, मासल अगो और बढे हुए पेटो पर, असयत जीवन के अमिट चिन्ह दिखाई देगे। वस्तु स्थिति इससे अन्यथा हो भी नही सकती। अपने जीवन पर विचार कीजिए और इस बात पर भी विचार कीजिए कि हमारे समाज में अधिकतर आदमियो का क्या लक्ष्य है, और फिर अपने-आप से प्रश्न पूछिये—"इन बहुसख्यक लोगो की दिलचस्पी का मुख्य विषय क्या है?" हम अपने वास्तविक हेतुओ को छिपाने और झूठे, बनावटी हेतु प्रकट करने के अभ्यस्त हो गये है अत हमको यह भले ही आश्चर्यजनक प्रतीत हो, किन्तु आपको ज्ञात होगा कि उनके जीवन मे स्वाद की तृप्ति, भोजन का आनन्द ही मुख्य दिलचस्पी का विषय होता है। गरीब से गरीब से लगाकर अमीर से अमीर तक, मेरे खयाल से हरेक के जीवन मे भोजन का आनन्द ही मुख्य आनन्द माना जाता है। गरीब श्रमजीवी लोगो को हम इसका अपवाद समझ सकते है, किंतु यह अपवाद उतने ही अशो मे होता है जितने अशो मे कि दरिद्रता उन्हे इस विकार के वशीभूत होने से दूर रखती है। ज्योही उन्हे अवकाश और साधन मिल जाते है, त्योही वे उच्च वर्गों की नकल कर के स्वादिष्ट से स्वादिष्ट और मिष्ट पदार्थ प्राप्त करते है और शक्ति भर खूब खाते और पीते है। जितना अधिक वे खाते है, उतना ही वे अपने-आपको न केवल सुखी बल्कि मजबूत और तन्दुरुस्त खयाल करते है। और उच्च वर्ग के लोग जिनकी भोजन के विषय मे ठीक यही धारणा होती है उनके इस विश्वास को पुष्ट करते है। डाक्टर लोग कहते है कि बहु-व्यय साध्य भोजन मास सबमे अधिक स्वास्थ्यदायक होता है, और पढे लिखे लोग इन डाक्टरो का अनुसरण कर के यह समझते है कि सुस्वादु पोषक और सरलता से पच जाने वाला भोजन ही सुख और सन्तोष का कारण है, हालांकि वे इस बात को छिपाने की कोशिश करते है।

धनी आदमियो के जीवन की ओर देखिए, उनकी बातचीत को

सुनिये। दर्शन, विज्ञान, कला, कविता, सम्पत्ति का विभाजन, लोक कल्याण बालको की शिक्षा आदि कैसे बडे-बडे विषयो की वे चर्चा करते है, किन्तु अधिकतर लोगो के लिए यह सब चर्चा कोई अर्थ नही रखती—काम के, असली काम के बीच अर्थात दुपहर के भोजन और सायकाल के भोजन के बीच उन्हे जो समय मिलता है उसको व्यतीत करने के लिए वे ऐसी चर्चाये करते रहते है, जब कि उनका पेट पूरी तरह भरा होता है और उनके लिए और अधिक खा सकना असम्भव होता है। अधिकतर स्त्री पुरुषो की, खासकर प्रारम्भिक अवस्था के बाद, जीवित दिलचस्पी केवल इसी बात मे रहती है कि कैसे खाया जाय, क्या खाया जाय तथा कब और कहा खाया जाय।

कैसा भी गम्भीर समारोह हो, उत्सव का प्रसग हो, पूजा-पाठ का अवसर हो, उद्घाटन समारोह हो, भोजन कार्य-क्रम अनिवार्य रूप से जुडा रहता है।

यात्रा करने वाले लोगो को देखिए। इन लोगो के उदाहरण में यह बात खास तौर पर प्रकट हो जाती है। अजायबघर, वाचनालय, धारा सभा के भवन—यह सभी बडे अच्छे स्थान है। किन्तु हम खाना कहाँ खायेगे? सबसे बढिया खाना कहां मिलता है। जब लोग बढिया पोशाक पहन और सुगन्धित इत्र और तेल लगाये फूलो के गुलदस्तो से सजी हुई मेज के चारो ओर भोजन के लिए एकत्र होते है तो कितनी प्रसन्नता के साथ वे अपने हाथो को रगडते है और मुस्कराते है।

यदि हम अधिकतर लोगो के दिलो मे झाक सके, तो हमको उनकी सर्वोपरि इच्छा क्या ज्ञात होगी? नाश्ते और भोजन की भूख! बचपन से लगाकर बडी उम्र तक के मनुष्य के लिए सबसे कठोर दण्ड क्या होता है? खाने के लिए केवल रोटी और पीने के लिए पानी देना। वे कौन से कारीगर है जो सबसे ऊचे वेतन पाते है? रसोइये! घर की मालकिन की दिलचस्पी का मुख्य विषय कौन सा होता है?

मध्यम वर्ग की स्त्रियो की बातचीत आम तौर पर किस विषय पर होती है ? यदि उच्च वर्गो के लोगो की बातचीत का झुकाव इसी ओर नही होता तो इसका यह कारण नही कि वे ज्यादा शिक्षित होते है अथवा अधिक उच्च विषयो की चर्चा मे जुटे रहते है, बल्कि इसका कारण यह है कि उन्हे ऐसा नौकर या रसोइया मिला होता है जो भोजन सम्बन्धी चिन्ताओ से उन्हे मुक्त रखता है। किन्तु एक बार आप उन्हे इस सुविधा से वंचित कर दीजिए, तो आपको मालूम हो जायगा कि उन्हे किस बात की चिन्ता होगी। सारी चर्चा भोजन के विषय पर आकर समाप्त हो जाती है। बटेर की कीमत क्या है ? कहवा सबसे अच्छा कैसे बनाया जाता है, मीठी रोटिया कैसे पकाई जाती है आदि आदि। नामकरण सस्कार के लिए, शादी या गमी के मौके पर, पूजा-पाठ के निमित्त, मित्र के आगमन या विदायगी के अवसर पर, यादगार दिवस मनाने के लिए, किसी महान् वैज्ञानिक, दार्शनिक या महात्मा की जन्म या मृत्यु-तिथि मनाने के लिए लोग इकट्ठे होते है और ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अत्यन्त उच्च उद्देश्यो मे सलग्न हो। वे कहते ऐसा ही है, किन्तु यह तो केवल दम्भ होता है। वे सब इस बात को जानते है कि उक्त अवसरो पर अच्छा खाने और पीने को मिलेगा और इसी बात को लेकर वे मुख्यतः एकत्र होते है। ऐसे अवसरो के लिए कई दिन पहले से जानवरो की हत्या की जाती है, टोकरो खाने पीने का सामान खरीदा जाता है। रसोइये और उनके सहायक, भोजन के घर मे काम करने वाले लडके और लडकिया, साफ कलफदार कुर्ते पहने और टोपिया लगाये हुए काम मे जुटे रहते है। मुख्य रसोइये जिनको सात सात और आठ-आठ-सौ मासिक वेतन मिलता है, हिदायत देते रहते है। रसोइये भोजन के पदार्थों को काटने, गून्दने, भूनने, जमाने और सवारने मे लगे रहते है। इतनी ही गम्भीरता और महत्त्व के साथ समारोह का मुख्य व्यवस्थापक एक कलाकार की भाति व्यस्त रहता है, वह अनुमान लगाता

हैं सोचता है और अपनी आँख से व्यवस्था करता रहता है। फूलों की देख-भाल करने का काम एक माली के सुपुर्द होता है। बर्तन माँजने और धोने वाली नौकरानियाँ अलग काम करती रहती हैं। आदमियों की फौज की फौज काम में जुटी रहती है, हजारों काम के दिनों की मेहनत का फल निगल लिया जाता है और यह सब इसलिए होता है कि लोग इकट्ठे हों और किसी विज्ञान के महापंडित या धर्मगुरु की चर्चा करें या किसी मृतक मित्र की यादगार मनावें या किसी नवविवाहित दम्पति का जीवन में प्रवेश करने के अवसर पर अभिनन्दन करें।

मध्यम और निम्न श्रेणियों में तो यह बात बिल्कुल प्रकट रूप में पाई जाती है कि प्रत्येक त्यौहार और शादी-गमी का उपयोग पेट-पूजा के लिए होता है। उनमें इन प्रसंगों का यही अर्थ समझा जाता है। लोगों के एकत्र होने का अर्थ भोजन का आनन्द लूटना होता है। यह शब्द इतना व्यापक है कि यूनानी और फ्रांसीसी भाषा में 'शादी' और 'दावत' शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। किन्तु धनिक लोगों की उच्च श्रेणियों में खासकर सुसंस्कृत लोगों में जो एक अर्से से सम्पत्ति के स्वामी चले आये हैं बड़े कौशल के साथ इस बात को छिपाया जाता है और ऐसा प्रकट किया जाता है कि भोजन गौण विषय है और केवल दिखावे के लिए आवश्यक होता है। और यह बहाना आसान भी होता है, कारण अधिकतर उदाहरणों में अतिथि लोग सच्चे अर्थों में तृप्त होते हैं, वे कभी भी भूखे नहीं होते।

वे यह दम्भ करते हैं कि भोजन उनके लिए जरूरी नहीं है, बल्कि एक बोझ है किन्तु यह झूठ है। भोजन की बढ़िया तश्तरियों के बजाय, रोटी और पानी का जिक्र छोड़िए आप उन्हें मामूली पकौड़ियाँ या चाकलेट का पानी या ऐसी किस्म की अन्य खाने की चीजें देकर देखिये, तो कैसा तूफान उठ खड़ा होता और किस प्रकार वास्तविक सत्य प्रकट हो जाता अर्थात् यह मालूम हो जाता कि एकत्रित लोगों की दिलचस्पी का मुख्य विषय पेट-पूजा है न कि वह जो प्रकट किया जाता है।

लोग क्या बेचते है, इसपर नजर डालिए। नगर मे जाकर देखिये लोग क्या खरीदते है। साज-शृगार की चीजे और पेट-पूजा की सामग्री। और वास्तव मे इसके सिवा अन्यथा हो ही नही सकता। भोजन के बारे मे सोचना तभी बन्द हो सकता है, इस विकार को तभी वश मे किया जा सकता है, जब मनुष्य आवश्यकता पूर्ति के अलावा कुछ न खावे। किन्तु जब मनुष्य आवश्यक हो जाने पर ही अर्थात् पेट ठसाठस भर चुकने के बाद ही खाना बन्द करता है। तो हालात जैसे है उससे अन्यथा नही हो सकते। यदि भोजन के आनन्द का उपयोग करना चाहे, यदि इस आनन्द के प्रति उनके मन मे गहरी आसक्ति हो, यदि वे इसको अच्छा समझे (जैसा कि इस जमाने के अधिकतर आदमी समझते है, चाहे वे शिक्षित हो या अशिक्षित) तो इस आनन्द के विस्तार की कोई सीमा नही बाधी जा सकती, उसे चाहे जितना बढाया जा सकता है। आवश्यकता पूर्ति की सीमा हो सकती है किन्तु आनन्द की कोई सीमा नही। हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए रोटी, चावल, दाल और शाक-भाजी जरूरी और काफी हो सकते है, किन्तु आनन्द की पूर्ति के लिए नाना भाँति के व्यञ्जन भी काफी नही हो सकते।

रोटी आवश्यक और काफी खाद्य है। (यह इस बात से सिद्ध है कि केवल रोटी खाकर करोडो आदमी मजबूत, क्रियाशील, तन्दुरुस्त रहते है और कठोर परिश्रम करते है।) किन्तु रोटी को किसी स्वादिष्ट पदार्थ के साथ खाने मे ज्यादा आनन्द आता है। रोटी को यदि मास के उबले हुए पानी मे भिगो दिया जाय तो वह अच्छी लगती है। यदि इस पानी मे कुछ तरकारी या तरकारियाँ मिला दी जाये तो और भी अच्छा रहता है। मास खाने मे अच्छा लगता है, किन्तु मास उबाला हुआ नही, बल्कि भूना हुआ अच्छा होता है। मक्खन के साथ वह और भी अच्छा लगता है। मास के कुछ खास हिस्से विशेष पसन्द किये जाते है। इसके साथ तरकारियाँ और दाल वगैरा और शामिल कर लीजिए। फिर शराब भी पीजिए, लाल शराब ज्यादा [illegible] होती है। मनुष्य

को इससे अधिक कुछ न चाहिए, किन्तु यदि शोरबे मे अच्छी तरह भीगी हुई मछली मिल जाय तो सफेद शराब के साथ वह भी निगली जा सकती है। अब तो ऐसा मालूम देगा मानो आदमी और कुछ न खा सकेगा चाहे कितना ही बढिया या स्वादिष्ट पदार्थ सामने क्यो न आ जाय। किन्तु एक मीठी तश्तरी फिर भी पेट मे डाल ली जा सकती है। गर्मियो मे तरह-तरह के बर्फ और सर्दियो मे उबले हुए फल और सुरक्षित पदार्थ वगैरा-वगैरा। यह हुआ हमारा भोजन, साधारण भोजन। ऐसे भोजन के आनन्द मे भारी वृद्धि की जा सकती है। भोजन के पहले उत्तेजक नाश्ते किये जा सकते है, दुपहरी की जा सकती है, स्वादिष्ट पदार्थो के भिन्न-भिन्न सम्मिश्रण तैयार किये जा सकते है। भोजन के कमरे को फूलो से तथा अन्य प्रकार सजाया जा सकता है। भोजन के समय सगीत की व्यवस्था की जा सकती है।

और विचित्रता यह है कि जो आदमी इस प्रकार नित्य ठसाठस भोजन करते है, उन्हे बडी सरलता के साथ यह यकीन दिलाया जाता है कि वे फिर भी नैतिक जीवन बिता सकते है।

[९]

व्रत-उपवास उत्तम जीवन की एक आवश्यक शर्त है, किन्तु सामान्य आत्म-सयम की भाँति व्रत-उपवास करने मे भी यह प्रश्न पैदा होता है कि प्रारम्भ हमको कहा से करना चाहिए ? उपवास किस प्रकार किया जाय ? कितनी बार खाया जाय ? क्या खाया जाय ? क्या न खाया जाय ? और जिस प्रकार हम एक क्रम का पालन किये बिना कोई काम नही कर सकते, उसी प्रकार हम यह जाने बिना कि भोजन के विषय मे आत्म-सयम का प्रारम्भ कहा से किया जाना चाहिए, हम उपवास नहीं कर सकते।

उपवास ! उपवास-विधि का विश्लेषण और उपवास का प्रारम्भ

कहाँ से किया जाय? यह खयाल ही अधिकांश लोगों को हास्यास्पद और अटपटा प्रतीत होता है।

मुझे याद पड़ता है कि एक पादरी ने, जिसे अपनी मौलिकता पर अभिमान था, सन्यासियों के वैराग्य की टीका करते हुए मुझसे कहा था कि "हमारा ईसाई धर्म व्रत-उपवासों और कष्ट-सहन का धर्म नहीं है, बल्कि गो-मांस सेवी धर्म है। कहाँ तो सद्गुणों का समुच्चय ईसाई धर्म और कहाँ गो-मांस सेवन!"

अन्धकार के एक लम्बे युग के दौरान में और हर प्रकार के पथ प्रदर्शन से वंचित रहने के कारण हमारे जीवन में इतने अटपटे और अनैतिक विचार घुस गये हैं (खासकर उत्तम जीवन के निचले क्षेत्र में भोजन के विषय में, जिसके बारे में किसी ने ध्यान नहीं दिया) कि इस जमाने में हम धार्मिक जीवन और गो-मांस सेवन में कितना भारी अन्तर है, यह भी नहीं समझ सकते।

धर्म और गो-मांस सेवन की एक पंक्ति बिठाये जाने पर हमें जरा भी आश्चर्य नहीं होता, इसका केवल यही कारण है कि हम एक विचित्र परिस्थिति के शिकार बन चुके हैं। हमारी आँखें हैं, किन्तु हम देखते नहीं, हमारे कान हैं, लेकिन हम सुनते नहीं। कोई ऐसी दुर्गन्धि नहीं, ऐसी आवाज नहीं, ऐसी वीभत्सता नहीं कि जिसका मनुष्य इतना अभ्यस्त न हो जाय कि वह चूं भी न करे, हालांकि एक अनभ्यस्त मनुष्य को वह तुरन्त खटकेगा। नैतिक क्षेत्र में भी ठीक यही बात होती है। धर्म और नैतिकता और गो-मांस सेवन का मेल यही सिद्ध करता है।

कुछ दिनों पहले मैंने पूना नगर के कसाई-घर को देखा। यह नये और सुधरे हुए तरीके पर बनाया गया है ताकि पशुओं को कम से कम कष्ट हो। वह शुक्रवार का दिन था। बहुत से पशु वहां मौजूद थे।

'भोजन विज्ञान' नाम की बढ़िया पुस्तक को पढ़ने से बहुत पहले ही मैं किसी कसाई-घर को देखना चाहता था, ताकि मैं अपनी आंखों से इस प्रश्न का [illegible] को देख सकूं, जो निरामिष भोजन की चर्चा के

समय उठाया जाता है। किंतु पहले तो मुझे ऐसा करने में लज्जा अनुभव हुई, क्योंकि जब आपको यह मालूम होता है कि अमुक स्थान पर पशुओं को काटा जाता है और आप उस कष्ट-कर कार्य को नहीं रोक सकते तो उस उत्पीडन को देखने में आपको लज्जा महसूस हुए बिना नहीं रह सकती। अतः मैं कसाई-घर को देखने की उतनी इच्छा को टालता रहा।

किंतु कुछ दिनों पहले मुझे सडक पर एक कसाई मिला जो अपने घर से ड्यूटी लौट रहा था। वह कुशल कसाई न था और उसका काम छुरा भोंकना मात्र था। मैंने उससे पूछा कि तुम जो पशुओं को मारते हो उन पर तुमको क्या अफसोस नहीं होता? उसने मुझे वही जवाब दिया जो आम तौर पर दिया जाता है। "मैं क्या अफसोस करूं? यह तो आवश्यक है।' पर जब मैंने उससे कहा कि मांस खाना जरूरी नहीं है, बल्कि एक विलासिता है तो वह मुझसे सहमत हो गया और उसने स्वीकार किया कि उसे उन जानवरों के लिए अफसोस है। 'लेकिन मैं करूं क्या? मुझे अपनी रोटी तो कमाना ही पडेगी। पहले मुझे मारने में डर लगता था। मेरे पिता ने तो अपनी सारी उम्र एक मुर्गी के बच्चे तक को हलाल नहीं किया।' अधिकतर रूसी प्राण हरण करना पसन्द नहीं करते, उन्हें दया आ जाती है और दया की भावना को वे 'डर' शब्द से प्रकट करते हैं। यह आदमी भी डरता था, किंतु अब नहीं डरता। उसने मुझे बताया कि कसाई घर में अधिकतर काम शुक्रवार को होता है और शाम पडे देर तक होता रहता है।

बहुत दिन हुए, जब मेरी एक निवृत्त हुए सिपाही से, जो कसाई का काम करता था, बातचीत हुई। जब मैंने उससे कहा कि मारना एक निष्ठुर काम है तो उसे आश्चर्य हुआ और उसने वही प्रचलित बात दुहराई कि यह तो विधि-विहित कार्य है। किंतु बाद में वह मुझसे सहमत हो गया और बोला—"खास तौर पर जब वे शान्त होते हैं, पालतू पशु होते हैं। वे बिचारे हम पर विश्वास कर के आते हैं। यह दृश्य बड़ा

करुणाजनक होता है ।'

यह भयकर स्थिति है । पशुओ की पीडा और मौत नहीं, बल्कि यह बात भयकर है कि मनुष्य अकारण अपनी सर्वोच्च आत्मिक शक्ति--अपने ही जैसे जीवो के प्रति दया और सहानुभूति की भावना को कुचल देता है और अपनी भावनाओ की अवहेलना कर के निर्दयी बन जाता है । और मनुष्य के दिल मे किसी के प्राण न लेने के धार्मिक विधान ने कितना गहरा घर किया हुआ है ।

एक बार जब मै मास्को से गाँव के लिए पैदल रवाना हुआ, (टालस्टाय अक्सर पैदल यात्रा किया करते थे ।--अनुवादक) तो रास्ते मे कुछ गाडीवानो ने, जो पास के जगल से ईंधन लेने जा रहे थे, मुझे गाडी पर बैठ जाने के लिए कहा । मै पहले नम्बर की गाडी मे बैठा हुआ था । उसका गाडीवान एक मजबूत सुर्ख रग का देहाती आदमी था । ऐसा मालूम होता था कि वह शराब पीता होगा । जब हम एक गाँव मे दाखिल हुए तो हमने देखा कि एक मोटे ताजे, नगे, गुलाबी रग के सुअर को कत्ल करने के लिए चौक मे से घसीट कर ले जाया जा रहा है । वह बडी बुरी तरह चीख और चिल्ला रहा था और उसकी चीख-चिल्लाहट आदमी-सी मालूम देती थी । हमारे देखते देखते लोग उसे मारने लगे । एक आदमी ने उसके गले मे चाकू घुसेड दिया । सुअर और भी जोर और तीखी आवाज मे चीखने लगा, आदमियो के पजे से अपने आपको छुडा कर खून से लथपथ हुआ भाग निकला । मेरी नेत्र-शक्ति कमजोर होने के कारण मै सारी बाते न देख सका । मैने सिर्फ सुअर का मनुष्य जैसा गुलाबी बदन देखा और उसकी विवश चीख-पुकार सुनी । किन्तु गाडीवान ने सब बातो को बडे ध्यानपूर्वक देखा । लोगो ने सुअर को पकडा, दबोचा और उसका गला काट डाला । जब सुअर की चीख-पुकार शान्त हो गई तो गाडीवान ने एक लम्बा सास ली । वह बोला—"क्या मनुष्य को ऐसी बातो के लिए सचमुच जवाब नहीं देना पडेगा ?"

हिंसा के विरुद्ध मनुष्य की भावना इतनी तीव्र है। किन्तु उदाहरण से लोभवृत्ति को प्रोत्साहन मिलने से हिंसा परमात्मा द्वारा अनुमोदित मानी जाने के कारण और सबसे अधिक स्वभाववश लोगों की यह स्वाभाविक भावना पूर्णत: लुप्त हो जाती है।

शुक्रवार को मैंने तुला जाने का निर्णय किया और अपने एक नितान्त दयालु परिचित से साथ चलने के लिए कहा।

'हाँ, मैंने सुना है कि कसाई-घर की व्यवस्था अच्छी है और उसको देखने जाने का मेरा इरादा भी रहा है। किन्तु यदि वहाँ जानवरों को कत्ल किया जा रहा होगा तो मैं भीतर न जाऊँगा।'

'क्यों नहीं? मैं यही तो देखना चाहता हूँ। यदि हम मांस खाते हैं तो जानवरों को तो मारा ही जायगा।'

'नहीं नहीं, मैं नहीं जा सकता।'

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि मेरा यह परिचित शिकारी था और खुद पशु-पक्षियों का शिकार करता था।

हाँ तो हम कसाई घर पहुँचे। अहाते में घुसते ही हमको भारी वमनकारक, तीखी गंध का अनुभव हुआ। बढ़ई के सरेस या सरेस के वार्निश जैसी यह गंध थी। इमारत लाल ईंटों की थी, बहुत बड़ी थी, उसमें महराबदार छत और ऊँची-ऊँची चिमनियाँ थीं। हम फाटक के भीतर दाखिल हुए। दाहिने हाथ की ओर एक विशाल बाड़ा था—कोई तीन चौथाई एकड़ होगा। सप्ताह में दो बार जानवर बिक्री के लिए यहाँ लाये जाते हैं। इस बाड़े के पास ही द्वार-रक्षक का कमरा था। बाईं ओर दो कमरे थे जिनके महराबदार दर्वाजे थे, ढालू फर्श कोलतार की थी और लाशों को हटाने तथा टाँगने के साधन बने हुए थे। द्वार-रक्षक के कमरे की दीवार के सामने बेंच पर आधे दर्जन कसाई बैठे हुए थे। उनके कपड़े खून से भरे हुए थे। उनकी चढ़ी हुई बाहों से पता चलता था कि उनके बाजुओं पर भी खून के छींटे पड़े हुए हैं। उनको अपना काम खत्म किये आध घंटा हो गया था इसलिए

हम उस दिन केवल खाली कमरो को ही देख सके। हालाकि ये कमरे दोनो ओर से खुले हुए थे, किन्तु उनमे गरम खून की तीखी गंध फैली हुई थी, फर्श भूरे रंग का था और चमक रहा था। उसकी दरारो में काला खून जमा था।

एक कसाई ने पशुओ के कत्ल किये जाने की क्रिया हमको समझाई और वह स्थान भी बताया जहा पशुओ को कत्ल किया जाता था। मै उसकी बात को अच्छी तरह न समझ पाया और पशुओ के कत्ल किए जाने के बारे मे मै गलत किन्तु भयकर खयाल बना बैठा। मैने खयाल किया, जैसा कि अक्सर होता है, कि कल्पना की अपेक्षा वस्तुस्थिति का मुझ पर कम गहरा असर पड़ेगा। किन्तु मेरा यह खयाल ठीक न था।

अगली बार जब मै कसाई-घर देखने गया तो समय पर पहुच गया। उस दिन शुक्रवार था और वह जून का महीना था। जब मै पहली मर्तबा कसाई-घर आया, उस समय की अपेक्षा इस समय सरेस और रक्त की गंध अधिक तीव्र और तीखी थी। काम पूरे जोरो पर था। रेतीला चौक जानवरो से भरा हुआ था और सब जानवर बाड़ो मे हाक कर कत्लगाह के नजदीक ले आये गये थे।

अहाते के बाहर सड़क पर गाड़ियाँ खड़ी हुई थी, जिनसे बैलो, बछड़ो और गायो को बाधा हुआ था। दूसरी गाड़ियो को खींचने के लिए अच्छे घोड़े थे। इन गाड़ियो मे जिदा बछड़े भरे हुए थे। इनके सिर नीचे लटके हुए थे और इधर से उधर हिल रहे थे। ये गाड़िया एक के बाद एक आ रही थी और खाली की जा रही थी। ऐसी कुछ गाड़िया बैलो की लाशो को लिए हुए वापस लौट रही थी। इनके कांपते हुए पैर बाहर छटपटा रहे थे। इनके सिर और चमकते हुए लाल फेफड़े और भूरे रंग के यकृत भी नजर आ रहे थे। अहाते के पास जानवरो को बेचने वालो के घोड़े खड़े थे। कसाई खुद लम्बे कोट पहने हुए और हाथो मे चाबुक तथा कोड़े लिए हुए चौक मे इधर उधर घूम रहे

थे । वे या तो एक ही मालिक के जानवरो पर कोलतार से निशान लगा रहे थे, या सौदा कर रहे थे, या बैलो और साडो को बडे चौक मे कत्ल-गाह को जाने वाले अहातो मे हाक कर ले जा रहे थे । ये लोग प्रकटत रुपये पैसे का हिसाब लगाने और जोड-बाकी करने मे व्यस्त थे और इन जानवरो को मारना ठीक है या नही यह खयाल उनसे उतना ही दूर था, जितना कि यह प्रश्न कि कमरो की फर्श पर फैलने वाले रक्त का रासायनिक रूप कैसा होता है ।

चौक मे कसाई नजर न आते थे । वे कमरो के भीतर काम कर रहे थे । उस दिन करीब सौ पशुओ के सिर धड से जुदा किये गये । मै एक कमरे के भीतर घुसने जा ही रहा था कि मुझे दर्वाजे पर रुक जाना पडा । एक कारण तो यह हुआ कि कमरा लाशो से पटा पडा था । इन लाशो को हटाया जा रहा था । दूसरे फर्श पर खून भी बह रहा था और ऊपर से भी टपक रहा था । सबके सब कसाई जो वहाँ मौजूद थे खून से भरे हुए थे और मै भी यदि भीतर दाखिल हो गया होता तो खून से भरे बिना न रहता । एक लटकी हुई लाश को नीचे उतारा जा रहा था, दूसरी दर्वाजे की ओर ले जाई जा रही थी, एक तीसरा कत्लशुदा बैल अपनी सफेद टागो को ऊपर उठाये हुए पडा था और एक कसाई मजबूत हाथ से उसकी तनी हुई खाल को उतार रहा था ।

जिस दर्वाजे पर मै खडा था, उसके सामने वाले दर्वाजे के भीतर एक बडे लाल रग के मोटे ताजे बैल को ले जाया गया । दो आदमी उसको घसीट रहे थे, और वह मुश्किल से भीतर घुसा होगा कि मैने एक कसाई को बैल की गर्दन के ऊपर छुरा उठा कर भोकते हुए देखा । बैल मानो उसकी चारो टागो ने एकाएक जवाब दे दिया हो, पेट के बल जोर से गिर पडा और अपनी पिछली टागो और सारे पिछले हिस्से को छुडाने की कोशिश करने लगा । दूसरा कसाई फौरन बैल पर तड-फडाती हुई टागो के सामने की ओर से झपटा उसके सीगो को पकड लिया और उसके सिर को मरोड कर जमीन पर रख दिया । इसी दूसरे

हम उस दिन केवल खाली कमरों को ही देख सके। हालांकि ये कमरे दोनों ओर से खुले हुए थे किन्तु उनमें गरम खून की तीखी गंध फैली हुई थी, फर्श भूरे रंग का था और चमक रहा था। उसकी दरारों में काला खून जमा था।

एक कसाई ने पशुओं के कत्ल किये जाने की क्रिया हमको समझाई और वह स्थान भी बताया जहां पशुओं को कत्ल किया जाता था। मैं उसकी बात को अच्छी तरह न समझ पाया और पशुओं के कत्ल किए जाने के बारे में मैं गलत किन्तु भयंकर खयाल बना बैठा। मैंने खयाल किया, जैसा कि अक्सर होता है, कि कल्पना की अपेक्षा वस्तुस्थिति का मुझ पर कम गहरा असर पड़ेगा। किन्तु मेरा यह खयाल ठीक न था।

अगली बार जब मैं कसाई-घर देखने गया तो समय पर पहुंच गया। उस दिन शुक्रवार था और वह जून का महीना था। जब मैं पहली मर्तबा कसाई-घर आया, उस समय की अपेक्षा इस समय सरेस और रक्त की गंध अधिक तीव्र और तीखी थी। काम पूरे जोरों पर था। रेतीला चौक जानवरों से भरा हुआ था और सब जानवर बाड़ों से हांक कर कत्लगाह के नजदीक ले आये गये थे।

अहाते के बाहर सड़क पर गाड़ियाँ पड़ी हुई थीं, जिनसे बैलों, बछड़ों और गायों को बांधा हुआ था। दूसरी गाड़ियों को खींचने के लिए अच्छे घोड़े थे। इन गाड़ियों में जिंदा बछड़े भरे हुए थे। इनके सिर नीचे लटके हुए थे और इधर से उधर हिल रहे थे। ये गाड़ियां एक के बाद एक आ रही थीं और खाली की जा रही थीं। ऐसी कुछ गाड़ियाँ बैलों की लाशों को लिए हुए वापस लौट रही थीं। इनके काँपते हुए पैर बाहर छटपटा रहे थे। उनके सिर और चमकते हुए लाल फेफड़े और भूरे रंग के यकृत भी नजर आ रहे थे। अहाते के पास जानवरों को बेचने वालों के घोड़े खड़े थे। बेचनेवाले खुद लम्बे कोट पहने हुए और हाथों में चाबुक तथा कोड़े लिए हुए चौक में इधर उधर घूम रहे

थे। वे या तो एक ही मालिक के जानवरो पर कोलतार से निशान लगा रहे थे, या सौदा कर रहे थे, या बैलो और साडो को बडे चौक से कत्ल-गाह को जाने वाले अहातो मे हाक कर ले जा रहे थे। ये लोग प्रकटत रुपये पैसे का हिसाब लगाने और जोड-बाकी करने मे व्यस्त थे और इन जानवरो को मारना ठीक है या नही, यह खयाल उनसे उतना ही दूर था, जितना कि यह प्रश्न कि कमरो की फर्श पर फैलने वाले रक्त का रासायनिक रूप कैसा होता है।

चौक में कसाई नजर न आते थे। वे कमरो के भीतर काम कर रहे थे। उस दिन करीब सौ पशुओ के सिर धड से जुदा किये गये। मै एक कमरे के भीतर घुसने जा ही रहा था कि मुझे दर्वाजे पर रुक जाना पडा। एक कारण तो यह हुआ कि कमरा लाशो से पटा पडा था। इन लाशो को हटाया जा रहा था। दूसरे फर्श पर खून भी वह रहा था और ऊपर से भी टपक रहा था। सबके सब कसाई जो वहाँ मौजूद थे खून से भरे हुए थे और मै भी यदि भीतर दाखिल हो गया होता तो खून से भरे बिना न रहता। एक लटकी हुई लाश को नीचे उतारा जा रहा था, दूसरी दर्वाजे की ओर ले जाई जा रही थी, एक तीसरा कत्लशुदा बैल अपनी सफेद टागो को ऊपर उठाये हुए पडा था और एक कसाई मजबूत हाथ से उसकी तनी हुई खाल को उतार रहा था।

जिस दर्वाजे पर मै खडा था, उसके सामने वाले दर्वाजे के भीतर एक बडे लाल रग के मोटे ताजे बैल को ले जाया गया। दो आदमी उसको घसीट रहे थे, और वह मुश्किल से भीतर घुसा होगा कि मैने एक कसाई को बैल की गर्दन के ऊपर छुरा उठा कर भोकते हुए देखा। बैल मानो उसकी चारो टागो ने एकाएक जवाब दे दिया हो, पेट के बल जोर से गिर पडा और अपनी पिछली टागो और सारे पिछले हिस्से को छुडाने की कोशिश करने लगा। दूसरा कसाई फौरन बैल पर तड-फडाती हुई टागो के सामने की ओर से झपटा, उसके सीगो को पकड लिया और उसके सिर को मरोड कर जमीन पर रख दिया। इसी दूसरे

कसाई ने छुरे से उसके गले को काट डाला। सिर के नीचे मैले लाल खून का फव्वारा फूट निकला, जिसे खून से लथपथ हुए एक लडके ने टिन के पीपे में भर लिया। जब तक यह सब होता रहा तब तक बैल लगातार अपने सिर को मरोडता रहा—मानो वह उठने की कोशिश कर रहा हो—और अपना चारो टॉगो को हवा में हिलाता रहा। टिन बर्तन जल्दी से भरता जा रहा था, किंतु बैल अब भी जीवित था। उसका पेट जोर-जोर से सास ले रहा था। उसके अगले और पिछले पॉव इतनी तेजी से लडफडा रहे थे कि कसाइयो ने अलग खडे रहने मे ही खैर समझी। जब एक बर्तन भर चुका तो लडका उसे अपने सिर पर रख कर उठा ले गया। इस बीच दूसरे लडके ने एक और बर्तन बैल के सिर के पास रख दिया। यह बर्तन भी तेजी के साथ भरने लगा। किंतु फिर भी बैल अपने शरीर को हिला और पिछला टाँगो को पछाड रहा था।

जब खून गिरना बन्द हो गया तो कसाई ने जानवर का सिर उठाया और खाल उतारने लगा। बैल अब भी मरोड़े खा रहा था। उसका सिर खाल उतार लिये जाने के बाद सुर्ख नजर आता था और बीच-बीच मे सफेद नसे दिखाई दे रही थी। जिस जगह कसाई ने उसे टिका दिया, वही वह पडा रहा। दोनो तरफ खाल लटक रही थी। किंतु फिर भी बैल का मरोडे खाना बन्द न हुआ। तब एक दूसरे कसाई ने उसकी एक टाँग पकड कर तोड डाली और काट कर जुदा कर दी। शेष टाँगो और पेट मे मरोडे फिर भी जारी थे। दूसरी टागे भी काट कर अलग फेंक दी गई जहाँ उसी मालिक के दूसरे बैलो की टाँगे पडी हुई थी। इनके बाद लाश को घसीट कर टाँगने की जगह पर ले जाया गया और टॉग दिया गया। अब मरोडे बन्द हो चुके थे।

इस प्रकार मैंने दर्वाजे से दूसरे, तीसरे, चौथे बैल का हाल देखा। हर बैल का समान दशा होती थी। कटी हुई जीभ सहित सिर काट लिया जाता था और कटे हुए अग उसी प्रकार मरोडे खाते रहते थे।

अन्तर था तो केवल यही कि कसाई हमेशा एकदम वार नही करता था जिससे कि जानवर गिर पडे। कभी-कभी निशाना चूक भी जाता था। जब ऐसा होता तो बैल उछलता, चीखता और खून से लथपथ हुआ भागने की कोशिश करता। किंतु उस दशा मे उसका सिर एक डण्डे के नीचे खीच लिया जाता, दुबारा वार किया जाता और वह गिर पडता।

बाद मे मैं उस दर्वाजे के भीतर घुसा, जहाँ बैलो को ले जाया जाता था। यहाँ भी मैंने वही बात देखी। और चूंकि यहाँ मैं नजदीक से देख सका, इसलिए ज्यादा साफ-साफ देख पाया। हर बार जब भी अहाते मे किसी बैल को पकडा जाता और उसे सीगो पर रस्सी बाध कर आगे खीचा जाता, तथा वह खून की गंध से भडक कर आगे बढने से इन्कार कर देता और कभी-कभी चीखने लगता और पीछे हट जाता। दो आदमी सारा जोर लगा कर भी उसको आगे न घसीट पाते, अत कोई कसाई हर बार घूम कर जाता, जानवर की पूछ पकडता और उसको इतने जोर से मरोडता कि पूछ की हड्डी कडकडा उठती और बैल आगे बढ जाता।

जब कसाई लोग एक मालिक के जानवर का खात्मा कर लेते तो दूसरे मालिक के जानवरो का नम्बर आता। दूसरे झुण्ड मे पहला जानवर बैल न था, बल्कि सांड था बढिया किस्म का, अच्छी नस्ल का, टांगो पर सफेद धब्बे थे, जवान था, गठीले शरीर वाला और जीवन से भरा-पूरा। उसे आगे घसीटा गया, किन्तु उसने अपना सिर नीचे झुका लिया और दृढतापूर्वक मुकाबिला दिया। तब जो कसाई उसके पीछे आ रहा था, उसने उसकी पूछ पकडी, जिस प्रकार कि एक इजिन ड्राइवर सीटी के हत्थे को पकडता है, उसको मरोडा, पूछ की हड्डी कडकडाई और बैल आगे की ओर झपटा और जो लोग रस्सी पकडे हुए थे वे अस्तव्यस्त हो गये। वह फिर रुक गया अपनी काली आंखो से अगल-बगल देखने लगा। उसकी आंखो के सफेद हिस्सो में खून उतर आया था। किन्तु पूंछ फिर कडकडाई गई और बैल आगे झपटा और निर्दिष्ट

स्थान पर पहुंच गया। वार करने वाला आगे आया, निशाना साधा और प्रहार किया। किन्तु निशाना चूक गया। सांड उछला, सिर को धटधडाया, चीखा और खून में लथपथ हुआ रस्सी तुडाकर पीछे भाग निकला। दर्वाजे पर खडे हुए आदमी दूर जा खडे हुए। किन्तु अनुभवी कसाइयों ने खतरों का मुकाबिला करने के अभ्यस्त आदमियों के समान सूझसे काम ले कर जल्दी में रस्सा पकड लिया, पुन पूछ मरोडने की क्रिया दुहराई गई और बैल कत्लगाह में जा पहुचा। वहां उसको खींच कर डण्डे के नीचे ले जाया गया, जहां से वह फिर न बच सका। वार करने वाले ने ठीक उस जगह निशाना ताका जहां बाल तारे की भांति अलग नजर आते है और हालांकि खून बह रहा था, फिर भी उसने वह जगह मालूम कर ली और प्रहार किया। वह सुन्दर जानवर जो जीवन से भरा हुआ था लडखडा कर गिर पडा। जब तक खून इकट्ठा किया जाता रहा और सिर की खाल उतारी जाती रही तब तक, उसका सिर और पांव मरोडे खाते रहे।

कसाई सिर की खाल उतारते-उतारते बडबडा रहा था—"अभागा दुष्ट सीधा भी तो नहीं गिरा।"

पांच मिनिट में सिर की खाल उतार ली गई। सिर सुर्ख के बजाय काला पड गया। पांच मिनिट पहले जो आंखे इस कदर भव्य प्रकाश से चमक रही थी, अब स्थिर और जड़ हो गई।

इसके बाद मैं उस हिस्से में गया जहां छोटे जानवर कत्ल किये जाते थे। यह बहुत बडा कमरा था, फर्श कोलतार का था। कमरे में पीठ वाली मेजे पडी हुई थी। इन पर भेडो और बछडो को कत्ल किया जाता था। यहां काम पहले ही खतम हो चुका था। इस लम्बे कमरे में, जहां खून की गंध भरी हुई थी, सिर्फ दो कसाई मौजूद थे। एक तो मुर्दा भेड के बच्चे की टांग में हवा भर रहा था और फूले हुए पेट को अपने हाथ से थपथपा रहा था। दूसरा कसाई नौजवान था। उसके पहनने के कपडे खून में खराब हो गये थे। वह एक मुडी हुई

सिगरेट पी रहा था। उनके अलावा इस लम्बे अंधेरे और तीव्र गंध से परिपूर्ण कमरे में और कोई न था। मेरे बाद कमरे में एक आदमी और दाखिल हुआ। सूरत शकल से वह निवृत्त सिपाही प्रतीत होता था। वह एक-डेढ़ साल का बिना खस्सी किया हुआ भेड़ का बच्चा लाया। उसका रंग काला था और गर्दन पर सफेद निशान थे। उसकी टाँगें बंधी हुई थी। इस जानवर को एक मेज पर रखा, जैसे बिस्तर पर सुलाते हो। बुड्ढे सिपाही ने कसाइयो से अभिवादन किया। ऐसा प्रतीत होता था कि उसकी इनसे पहले की पहचान रही होगी। वह उनसे पूछने लगा कि उनका मालिक उन्हे कब छुट्टी देता है। जो कसाई सिगरेट पी रहा था, चाकू लिए हुए आगे बढ़ा, मेज के कोने पर उसने धार लगाई और जवाब दिया कि छुट्टियो के दिन उन्हे काम नही करना पड़ता। जीवित भेड़ का बच्चा फूले हुए मुर्दा भेड़ के बच्चे के समान निश्चल पड़ा हुआ था। अन्तर केवल इतना था कि वह अपनी छोटी दुम को जल्दी-जल्दी हिला रहा था और उसकी बगलें मामूली से अधिक तेजी के साथ फूल और बैठ रही थी। सिपाही ने उसके उठे हुए सिर को धीरे से बिना किसी प्रयत्न के नीचे दबा दिया। कसाई ने, जो अब भी बातचीत कर रहा था, अपने बाँये हाथ से भेड़ के बच्चे का सिर पकड़ा और उसका सिर काट डाला। भेड़ का बच्चा तड़फड़ाया और उसकी छोटी दुम सख्त हुई और हिलना बन्द हो गया। कसाई खून गिरने की प्रतीक्षा में बुझी हुई सिगरेट को फिर से जलाने लगा। खून बह चला और भेड़ का बच्चा मरोड़े खाने लगा। बातचीत बिना किसी बाधा के जारी थी। सारा दृश्य वीभत्स था।

और उन मुर्गियो और मुर्गो के बच्चो का क्या जिक्र किया जाय जो अस्त व्यस्त दशा में अपने पंखो को फड़फड़ाते हुए इधर-उधर डोलते रहते है और जिनका नित्य हजारो रसोई घरो मे खून किया जाता है?

इस पर मजा यह कि एक दयालु सुसंस्कृत महिला इन जानवरो की लाशो को इस पूरे भरोसे के साथ निगल जाती है कि वह जो कुछ

कर रही ठीक कर रही है। साथ ही वह दो विरोधी बाते भी कहती है:—

पहली बात तो वह यह कहती है कि उसके डाक्टरो की राय में वह इतनी नाजुक है कि सिर्फ शाक-भाजी के आहार पर जीवित नही रह सकती और उसके कमजोर ढाचे के लिए मास नितान्त आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि वह इतनी सवेदनाशील है कि वह न केवल खुद जानवरो को पीडा नही देना चाहती, बल्कि उनकी पीडा को देख भी नही सकती।

किंतु वस्तुस्थिति यह है कि विचारी यह महिला कमजोर ता इसलिए है कि उसे मनुष्यो की प्रकृति के विपरीत आहार खाने की आदत डाली गई है और यह जानवरो के उत्पीडन को इस कारण नही रोक सकता कि वह उनको खाती है।

[१०]

हम यह दम्भ नही कर सकते कि हम इस बात को नही जानते। हम शुतुरमुर्ग नही है और यह नही मान सकते कि यदि हम जिस चीज को न देखना चाहे, उसकी ओर से आँखे बन्द कर ले तो उस चीज का अस्तित्व ही मिट जायगा। जिस चीज को हम देखना नही चाहते, उस चीज को जब हम खाना चाहते है, तो यह बात खास तौर पर चरितार्थ होती है। किंतु मास वस्तुत अनिवार्य अथवा यदि अनिवार्य नही तो कम से कम किसी रूप मे उपयोगी हो तब न! वह तो सर्वथा अनावश्यक है, वह पशु-वृत्तियो को बढाता है, वासनाये जागृत करता है और व्यभिचार और शराबखोरी का प्रसार करता है। और इस कथन की इस सत्य से लगातार पुष्टि होती रहती है कि युवक, दयालु विवेकशील व्यक्ति खास कर स्त्रियाँ और लडकियाँ, अनजाने यह महसूस करते है कि गो-मास-सेवन और सद्‌गुण परस्पर विरोधी तत्व है और

और ज्यों ही वे भले बनने की इच्छा करते हैं मांस खाना छोड़ देते हैं।

जिन लोगों को इस कथन की सत्यता में शक हो उन्हें वैज्ञानिकों और डाक्टरों की इस विषय की पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए। डॉक्टर ए० हेग की 'भोजन और आहार' नाम की छोटी पुस्तक अथवा 'यूरिक एसिड किस प्रकार रोग पैदा करता है' शीर्षक विस्तृत वैज्ञानिक ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि मांस मनुष्य के पोषण के लिए आवश्यक नहीं है। उन्हें पुराने ढर्रे के डाक्टरों की बात न सुनना चाहिए जो इस कथन को पुष्ट करते हैं कि मांस आवश्यक है सिर्फ इसलिए कि उनके पूर्वज ऐसा मानते थे और वे खुद भी ऐसा ही मानते हैं। यह डाक्टर अपनी राय का ठीक उसी प्रकार दृढ़ता और द्वेषपूर्वक समर्थन करते हैं जिस प्रकार कि पुरानी और परम्परागत चीजों का समर्थन किया जाता है।

तो, फिर मैं क्या कहना चाहता हूं? क्या यह कि लोगों को नैतिक बनने के लिए मांस खाना छोड़ देना चाहिए? बिल्कुल नहीं।

मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि उत्तम जीवन के लिए सद्कार्यों का एक क्रम आवश्यक होता है, यदि मनुष्य गम्भीरतापूर्वक सही जीवन बिताने का प्रयत्न करे तो उन्हें एक निश्चित क्रम का अनुसरण करना होगा और इस क्रम में आत्म-संयम, आत्म-निरोध पहला सद्गुण है जिसे प्राप्त करने की मनुष्य को कोशिश करनी चाहिए। और आत्म-संयम सिद्ध करने के लिए मनुष्य को अनिवार्यतः एक निश्चित क्रम का अनुसरण करना पड़ेगा और इस क्रम में पहला स्थान आहार विषयक संयम, अर्थात् उपवास को देना पड़ेगा। और यदि मनुष्य वस्तुतः उत्तम जीवन निर्वाह करने के लिए उत्सुक हुआ तो उपवास के सिलसिले में सबसे पहले मांस का परित्याग करेगा क्योंकि मांस-सेवन से न केवल विकार जागृत होते हैं बल्कि उसका उपयोग ही अनैतिक है। मांस के लिए एक ऐसा कार्य करना पड़ता है जो नैतिक भावनाओं के विपरीत होता है। उसके मूल में लोभ और स्वादु भोजन की इच्छा

पाई जाती है।

मास से क्यो परहेज करना चाहिए और उपवास और नैतिक जीवन के लिए मास-निषेध क्यो पहला कदम है, यह बात 'भोजन और आहार' नामक पुस्तक में बड़ी योग्यतापूर्वक प्रतिपादित की गई है। सिर्फ एक आदमी ने ही नहीं, बल्कि मानवता के समस्त जागृत जीवन-काल में जितने भी श्रेष्ठ पुरुष हुए है उनके रूप में सारी मानव जाति ने उक्त सत्य का प्रति-पादन किया है।

किन्तु यदि मास-भोजन का अनौचित्य अर्थात् अनैतिकता मानवता को इतने लम्बे अर्से से ज्ञात थी तो लोग इस नियम को अब तक क्यों न मानने लगे? यह प्रश्न उन लोगो द्वारा पूछा जायगा, जो विवेक की अपेक्षा लोकमत से अधिक प्रभावित होते है।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मानवता की नैतिक प्रगति, जो अन्य सब प्रगतियो की मूलाधार होती है, हमेशा धीमी होती है। किन्तु आकस्मिक नही, बल्कि वास्तविक प्रगति का चिन्ह यह है कि वह बिना किसी बाधा के सतत होती रहे।

और निरामिष आहार आन्दोलन की प्रगति इसी किस्म की है। यह प्रगति उपरोक्त मे वर्णित लेखको के शब्दो और मानव जाति के अमली जीवन मे प्रदर्शित हुई है। मानव जाति अनेक कारणो से स्वय-मेव मासाहार से शाकाहार की ओर बढी है और जानबूझकर आन्दोलन के उसी मार्ग पर जा रही है, जिसमे प्रकटत बन पाया जाता है और जो अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा है। यह आन्दोलन निरामिष भोजी आन्दोलन है। यह गत दस वर्षों मे अधिकाधिक तेजी से आगे बढा है। प्रतिवर्ष इस विषय पर अधिकाधिक पुस्तके और पत्र प्रकाशित हो रहे है। ऐसे लोग अधिकाधिक हमारे देखने मे आ रहे है जिन्होंने मास-सेवन छोड दिया है। और विदेशो मे खास तौर पर जर्मनी, इग्लैण्ड और अमेरिका में शाकाहारी होटलो और विश्रांत-गृहों की सख्या प्रतिवर्ष बढ रही है।

इस आन्दोलन पर उन लोगों को खास तौर पर प्रसन्नता होनी चाहिए जो पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिए नहीं कि निरामिषतावाद उस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है (प्रत्येक सही कदम महत्त्वपूर्ण और अ-महत्त्वपूर्ण दोनों होते हैं) बल्कि इसलिए कि यह इस बात का द्योतक है कि मानव जाति की पूर्णता प्राप्त करने की आकांक्षा गम्भीर और सच्ची है, क्योंकि उसका पहले कदम से लगा कर एक ही अपरिवर्तनीय क्रम रहा है।

जिस प्रकार लोग किसी मकान की दूसरी मंजिल पर पहुंचने के लिए विभिन्न स्थानों से दीवार पर चढने की निष्फल और यदा-कदा कोशिश करने के बाद अन्त में सीढ़ियों के आगे जमा हो जाय और उन्हें इस बात का यकीन हो जाय कि पहली सीढ़ी से होकर ही ऊपर चढा जा सकता है तो उन्हें प्रसन्नता हुए बिना नहीं रह सकती, इसी प्रकार निरामिषतावाद की प्रगति पर कोई भी व्यक्ति प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकता।

[यह निबन्ध हावर्ड विलियम्स की भोजन-विज्ञान (The Ethics of Diet) नामक पुस्तक के रूसी भाषान्तर की भूमिका के रूप में लिखा गया था।]

———

: २ :

लोग नशा क्यों करते हैं?

[१]

लोग ऐसी चीजो का इस्तेमाल क्यो करते है, जो उनको बेवकूफ और बेहोश बनाती है ? लोग शराब , गाजा, भाग, ताडी, तम्बाकू इत्यादि क्यो पीते है ? वे अफीम, चरस, सुल्फा और कोकीन जैसी नशीली चीजो का इस्तेमाल क्यो करते है ? नशा करने की आदत लोगो मे पहले किस तरह और क्यो शुरू हुई ? इस आदत का प्रसार इतना जल्दी क्यो हुआ और अब भी यह सभ्य और जगली सब तरह के लोगो में इतनी तेजी से क्यो फैलती जा रही है ? जहा पर शराब, ताडी इत्यादि का प्रचार नही है, वहा पर भी अफीम, सुल्फा, गाजा, चरस, भाग इत्यादि का इतना रिवाज क्यो है ? क्या वजह है कि दुनिया के इस कोने से उस कोने तक सर्वत्र तम्बाकू का इतना अधिक प्रचार हो रहा है ?

लोग नशा कर के सज्ञाहीन बनना क्यों पसन्द करते है ?

जब हम किसी व्यक्ति से पूछते है कि भाई, तुम्हे शराब पीने की लत कैसे पडी । और तुम अब भी शराब क्यो पाते हो तो वह फौरन जवाब देता है, ओह, इस के पीने में बडा मजा आता है । और सब लोग इसको पीते है इसलिए मै भी पीता हू । इसके अलावा वह यह भी कहता है कि 'इसके पीने से चित्त प्रसन्न रहता है, कुछ लोग तो—जिन्होने सम्भवत कभी इस बात को सोचने का कष्ट नहीं उठाया कि शराब पीकर वे कोई अच्छा काम कर रहे है या बुरा—यहा तक कह डालते है कि शराब स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है । इसके पीने से शरीर का ताकत बढती है । अर्थात् वे एक ऐसी बात कहते

है जो कभी की निराधार साबित हो चुकी है ।

किसी तम्बाकू पीने वाले से पूछिये कि भाई तुमने तम्बाकू पीना क्यो शुरू किया और अब भी तुम तम्बाकू क्यो पीते हो, तो वह भी यही जवाब देगा कि हर एक आदमी तम्बाकू पीता है इसलिए मैं भी पीता हूं, और इसके अलावा तम्बाकू पीने से समय अच्छी तरह से कट जाता है ।

जो लोग अफीम, चरस, सुल्फा, गाजा, भाग वगैरा का इस्तेमाल करते है वे भी शायद इसी तरह के जवाब देगे ।

यदि कोई आदमी 'अपना समय अच्छी तरह से काटने' 'अपने चित्त को प्रसन्न करने, अथवा 'दूसरे आदमियो की देखा-देखी करने' के लिए हारमोनियम पर अपनी अँगुलिया फिरावे, वशी वजावे, वीणा के स्वर निकाले, सितार झनझनावे, अथवा इसी प्रकार का दूसरी कोई काम करे तो उसका ऐसा करना क्षम्य माना जा सकता है । अर्थात् अगर कोई आदमी ऐसा काम करे जिससे प्रकृति-प्रदत्त सम्पत्ति का अपव्यय न होता हो, वडे भारी परिश्रम से उपार्जित वस्तुओ का नाश न होता हो और न अपना अथवा दूसरे लोगो का प्रत्यक्षत कोई नुकसान होता हो, तो उसका यह कार्य क्षम्य समझा जा सकता है । लेकिन तम्बाकू, शराव, गाजा, अफीम इत्यादि चीजो को तैयार करने में लाखो आदमियो की मेहनत खर्च होती है और लाखो वीघा वढिया से वढिया जमीन मे (और वह भी वहुधा वहा पर जहा लोगो के पास अनाज का खेती करने के लिये जमीन का अभाव होता है) आलू* सन,* पोस्त, अंगूर,* तम्बाकू और चाय की खेती की जाती है । प्रत्येक व्यक्ति इस वात को जानता और स्वीकार करता है कि ये मादक द्रव्य स्पष्टत हानिकर है । और इनका उपयोग करने से लोगो में

* यूरोप में इन चीजों का इस्तेमाल तरह-तरह की शरावें और दूसरी नशीली वस्तुए तैयार करने में वहुतायत से होता है ।

भयानक बुराइया पैदा हो जाती है। नशीली चीजो की बदौलत दुनिया में जितने आदमी मौत के शिकार होते है, उतने तमाम युद्धो और छूत वाली बीमारियो की बदौलत भी नही होते। लोग इस बात को अच्छी तरह से जानते है। और इसलिए यह कहना कि "सब लोग पीते है इसलिए मै भी पीता हूं," या "समय काटने के लिये पीता हूँ," या "मजा हासिल करने के लिये पीता हूं" बिल्कुल गलत है।

अतएव लोगो के नशा करने के कारण कुछ दूसरे ही होने चाहिए। हमको सब जगह बराबर ऐसे लोग मिलते है जो अपने बाल-बच्चो से प्रेम करते है और उनके लिए सब तरह का बलिदान करने को तैयार होते है। लेकिन फिर भी ये लोग शराब, ताडी अथवा चरस, सुल्फा, गाजा, अफीम और यहा तक कि तम्बाकू पर इतना पैसा बर्बाद कर डालते है जितना उनके नगे भूखे बच्चो के भोजन और वस्त्र के लिय पूरे तौर पर काफी हो सकता ह अथवा कम से कम उससे उनको कष्टो से बचाया जा सकता है। अगर किसी आदमी के सामने एक तरफ तो यह प्रश्न हो कि जिस कुटुम्ब से वह प्रेम करता है वह और अभाव-ग्रस्त हो जायगा और दूसरी तरफ उसके सामने नशीली चीजो को इस्तेमाल न करने का सवाल हो और यदि फिर भी वह पिछली बात की अपेक्षा पहली बात पसन्द करे तो उसके ऐसा करने की वजह यह नही हो सकती वह दूसरो की देखा देखी या प्रसन्न होने के लिए ऐसा करता है। उसको इसकी तरफ प्रेरित करने वाला कोई दूसरा अधिक प्रबल कारण होना चाहिए। क्योकि यह स्पष्ट है कि समय काटने अथवा केवल मजा हासिल करने के लिए इस तरह का काम नही किया जाता। किसी बडे प्रबल कारण से प्रेरित होकर ही आदमी ऐसा काम करता है।

जहा तक मैने इस विषयका अध्ययन किया, एवम इसके बारे में सोचा-विचारा है, दूसरे लोगो के इस तरह के उदाहरणों पर गौर किया

है और अपने निज के विषय में—जब मैं स्वयं शराब और तम्बाकू पिया करता था—गहराई से छान-बीन की है वहां तक मुझको मालूम हुआ है कि लोगों की इस आदत का कारण मामूली नहीं बल्कि बहुत बड़ा और गम्भीर है। मेरी सम्मति में वह कारण नीचे लिखे ढंग से वर्णन किया जा सकता है—

यदि मनुष्य अपने जीवन की ओर दृष्टि डाले तो उसको अपने शरीर के अन्दर बहुधा दो प्राणी दिखाई पड़ेंगे—एक तो वह जो अन्धा है और जिसका सम्बन्ध शरीर से है और दूसरा वह जो देखता है और जिसका सम्बन्ध आत्मा से है। उसके शरीर का अन्धा भाग मशीन की तरह खाता है, विश्राम लेता है, सोता है, सन्तानोत्पत्ति करता है और हिलता-डुलता है। उसके शरीर का आत्मिक या देखने वाला भाग शरीरिक भाग से बिलकुल जुड़ा हुआ होने पर भी स्वयं कुछ नहीं करता। वह सिर्फ पहले वाले भाग की चेष्टाओं और कार्यों को देखा करता है। जब वह उसके किसी काम को पसन्द करता है तो उसके साथ सहयोग करता है और जब वह उसके किसी काम को नापसन्द करता है तो उससे असहयोग कर देता है।

शरीर के इस देखने वाले या आत्मिक भाग की तुलना हम दिशा सूचक यंत्र की सुई के साथ कर सकते हैं। इस सुई का एक सिरा उत्तर की तरफ होता है और दूसरा सिरा दक्षिण की तरफ। यह सुई अपनी पूरी लम्बाई तक एक ऐसी चीज से ढकी रहती है जो तबतक हमारी नजर नहीं आ सकती जबतक कि यह सुई उपरोक्त दिशाओं को बतलाती रहती है। परन्तु ज्यों ही सुई इधर-उधर हिली-डुली और ज्योंही इसने दूसरी दिशाओं को बतलाना शुरू किया त्योंही वह ढकने वाली चीज हमारे सामने प्रत्यक्ष हो जाती है।

ठीक इसी प्रकार हमारा देखने वाला या आत्मिक अंश जिसके बाह्य स्वरूप को हम लोग सामान्यतः अन्तःकरण कह कर सम्बोधित

करते है हमको हमेशा एक तरफ सत्य और दूसरी असत्य का बोध कराता है। जबतक हम इस आत्मिक अशके बतलाये हुए मार्ग अर्थात् गलत रास्ते के बजाय सही रास्ते का अनुसरण करते रहते है तबतक हमको उसके अस्तित्व का अनुभव नही होता परन्तु ज्योही हम कोई काम अपना अन्तरात्मा के आदेश के विपरीत करते है त्योंही हमको इस आत्मिक अश के अस्तित्व का पता लग जाता है और तब वह हमको बतलाता है कि हमारे शरीरिक अश का काम अन्तरात्मा के निर्देश के विपरीत हुआ है। जब किसी मल्लाह को यह मालूम हो जाता है कि वह गलत रास्ते पर जा रहा है तब वह अपने मन का सामाधान दो तरीको से कर सकता है। एक यह कि जबतक दिशा सूचक यत्र द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर वह अपनी नाव को नही लेआवे तब तक पतवारों को घुमाने, एजिन को चलाने अथवा पालो को बाघने का क्रिया को रोक दे। दूसरे यह कि वह इस बातको भुला दे कि उसने गलत रास्ता पकड लिया है। इसी तरह जो आदमी इस बातका अनुभव करता है कि उसकी अन्तरात्मा और उसके शारीरिक अश के कार्यों मे परस्पर विरोध है, तो वह अपना काम केवल इन्ही दो तरीकों से जारी रख सकता है—एक यह कि वह अपने शारारिक अश के कार्यो को आत्मा के आदेशो के अनुकूल बना ले और दूसरे यह कि अन्तरात्मा द्वारा बहलाई गई अपने शारीरिक अश की गलतियो की तरफसे आँखे मींच ले।

इस प्रकार हम कह सकते है कि मनुष्य के जीवन में मुख्यत दो प्रकार के कार्य दिखाई देते है। एक तो वे कार्य है जिन्हे अन्तरात्मा स्वीकार करता है और जो उसी के अनुसार किये जाते है और दूसरे वे कार्य है जिन्हे अन्तरात्मा स्वीकार नही करता और जो अन्तरात्मा की राय के खिलाफ किये जाते है, ताकि मनुष्य पहले की भाति ही अपनी जीवन-चर्चा जारी रख सके।

कुछ लोग पहले प्रकार के कार्य करते है और कुछ लोग दूसरे प्रकार के। पहले प्रकार के कार्यो मे सफलता पाने का सिर्फ एक उपाय

है, और वह यह कि हम अपनी आत्मा को उन्नत बनावे, अपने आत्मिक ज्ञान की वृद्धि करे और अपने आत्मिक सुधार की ओर दत्त चित्त हो। दूसरे प्रकार के कार्यों अर्थात् अन्तरात्मा के आदेशो पर परदा डालने के कार्यों मे सफलता पाने के दो उपाय है। एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य उपाय यह है कि हम ऐसे कामो में अपने आपको लगाये रखे जिनके कारण हमारा ध्यान अन्तरात्मा की पुकार की ओर न जाने पावे और आन्तरिक उपाय यह है कि हम अपनी अन्तरात्मा को ही मैला कर डाले।

अगर कोई आदमी अपने सामने की चीज को न देखना चाहे तो वह दो प्रकार से यह कार्य कर सकता है। मानो वह अपनी नजर को किसी ऐसी दूसरी चीज पर लगादे जो उससे ज्यादा आकर्षक है या वह अपनी आखो को ही बन्द कर ले। इसी प्रकार हर एक आदमी अपनी अन्तरात्मा के आदेशो की दो प्रकार से उपेक्षा कर सकता है। मानो वह अपने ध्यान को खेल-कूद, राग, रंग, नाटक, सिनेमा, इसी तरह के अन्य कामो मे लगा दे या वह अपनी देखने की आन्तरिक शक्ति को कुण्ठित बना ले।

जिनकी नैतिक अनुभूति मद और मर्यादित होती है, वे जब मनोरजन के बाह्य कार्यों में व्यवस्त हो जाते है तो बहुधा वे अन्त करण के उन सकेतो को नही सुन पाते जो यह सूचित करते है कि वे जीवन में कहा पथ-भ्रष्ट होते है। किन्तु जिनका अन्त करण जाग्रत होता है, उनकी अनुभूति पर पर्दा डालने के लिए यह बाह्य साधन बहुधा काफी नहीं होते।

बाह्य साधन मनुष्य का ध्यान इस ज्ञान पर से सर्वथा नहीं हटा पाते कि उसके जीवन और अन्तरात्मा के आदेशो मे अन्तर है। यह ज्ञान मनुष्य के जीवन में बाधक बनता है, इसलिए लोग यथपूर्व जीवन-यापन करने के लिए, पचूक आन्तरिक उपाय का आश्रय लेते है अर्थात्

नशीली चीजों द्वारा मस्तिष्क को विषाक्त करके अन्त करण को कुण्ठित कर डालते हैं।

मनुष्य यह जानते हुए भी कि वह अपने अन्तरात्मा के आदेशों के अनुसार जीवन यापन नहीं कर रहा है, अपनी जीवन चर्या को नहीं बदल पाता, अन्तरात्मा के अंगों का अनुसरण नहीं कर पाता। जिन बाह्य कर्मों द्वारा जीवन और आत्मा के विरोध पर से ध्यान हट सकता है, वे नाकाफी सिद्ध होते हैं या पुराने पड़ जाते हैं और इसलिए लोग जीवन की गलतियों के सम्बन्ध में अन्त करण के आदेशों की उपेक्षा कर के यथापूर्व जीवन बिताने के लिए शरीर के उस अंग को कुछ समय के लिए विषाक्त बनाकर बेकार कर देते हैं जिसके द्वारा अन्त करण व्यक्त होता है। यह वैसी ही बात है जैसी कि यह बात कि जब कोई मनुष्य किसी चीज को नहीं देखना चाहता तो अपनी आखें बन्द कर लेता है।

[२]

दुनिया में लोग शराब, अफीम, चरस, भाग, और तम्बाकू इत्यादि इसलिए नहीं पीते कि ये चीजें स्वादिष्ट होती हैं, या इनमें आनन्द प्राप्त होता है, या शरीर में फुर्ती और ताजगी आती है। बल्कि लोग नशा इसलिए करते हैं कि वे अपना अन्तरात्मा की आवाज नहीं सुनना चाहते।

एक दिन मैं एक सड़क पर चला जा रहा था। उस सड़क पर कुछ गाड़ीवाले आपस में बातचीत करते हुए जा रहे थे। उनमें से एक को मैंने यह कहते हुए सुना, "सचमुच, जो आदमी अपने होश में होगा वह इस काम को करते हुए जरूर लज्जित होगा।"

उनके इस कथन का मतलब हुआ कि मनुष्य को जो काम नशे में ठीक मालूम होता है होश आने पर उसी काम को करने में उसको शरम मालूम पड़ता है। इन शब्दों से हमको उस मूल कारण का पता लगता जाता है जो मनुष्यों को नशा करने के लिये प्रेरित करता है।

लोग नशा इसलिए करते है कि अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम कर लेने के बाद उन्हे शरम मालूम न पडे या वे ऐसी हालत मे हो जायें कि उनको उन कार्यों को करने में कोई हिचक मालूम न हो जो उनकी अन्तरात्मा के तो विरुद्ध हैं लेकिन जिन्हे करने के लिए उनकी पशुवृत्ति उनको प्रेरित करती है।

जब कोई आदमी नशे की हालत मे नही होता है तो वह किसी वेश्या के यहा जाने, किसी के घर मे चोरी करने या किसी की हत्या करने मे हिचकिचाता तथा शरम महसूस करता है। परन्तु जो आदमी नशे मे होता है वह इन कामो को करते हुए जरा भी नही शरमाता। यही वजह है कि जो मनुष्य अपनी अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि के विरुद्ध कोई काम करना चाहता है, वह नशा पीकर अपने आपको बदहोश कर लेता है।

मुझ को उस रसोइये का बयान अच्छी तरह याद है जिसने मेरी एक रिश्तेदार वृद्ध महिला को मार डाला था। वह रसोइया इस महिला के यहा नौकर था। उसने अदालत के सामने बयान देते हुए कहा कि पहले तो मने अपनी प्रेमिका को—जो उसी घर मे नौकर थी घर के बाहर भेज दिया। बाद मे जब मालिकिन को मारने का समय आया तब मैंने हाथ मे छुरा लेकर उसके सोने के कमरे मे जाने का इरादा किया। लेकिन इस वक्त मुझको अनुभव हुआ कि जब तक मैं अपने पूरे होश मे हू तब तक मैं इस काम को नही कर सकूगा। ... जब मनुष्य अपने होश मे होता है, तब वह ऐसा काम करते हुए शरमाता है।' इसलिए मैं लौटकर वापस अपनी जगह पर चला आया। यहा पर पहले से शराब के दो गिलास भरकर मैं रख गया था। मैं इन दोनो गिलासो को पी गया। इसके बाद मुझमें इस काम को करने की हिम्मत आई। और मैंने महिला को मार डाला।

दुनिया मे नब्बे फीसदी अपराध इसी तरह से किये जाते है।—

"अपनी हिम्मत रखने के लिए नशा करो।"

दुनियामे जिन स्त्रियो का पतन होता है,उनमे से आधी स्त्रिया शराब के नशे मे ही पतित होती हैं। जो लोग पतित स्त्रियो के घरो अथवा वेश्यालयो मे जाते है, उनमे से करीब-करीब सब लोग तभी ऐसा करते है जब वे नशे मे बदहोश होते है। लोग शराव के इस गुण को अच्छी तरह से जानते है कि उसके पीने से अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि पर पर्दा पड जाता है। इसी मतलव से वे जान बूझकर शराव पीते है।

लोग न सिर्फ अपनी अन्तरात्मा की आवाज को दवाने के लिए खुद नशा करते है। वल्कि (इस बात का जानते हुए कि शराव का क्या असर होता है) जब वे दूसरो मे अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम कराना चाहते है तो उनको भी जान-बूझ कर मादक द्रव्य पिला देते है। अर्थात् उनको अत करण से वचित करने केलिए वदहवास कर देते है। युद्ध मे सिपाहियो को आमने सामने लडाने के लिए आमतौर पर शराव पिलाकर मत्त वना दिया जाता है क्योकि शराव पीने के वाद ही सिपाही अच्छी तरह से लड सकते है। सेवास्टोपोल पर आक्रमण करने वाले सारे के सारे फ्रासीसी सिपाही शराव के नशे मे चूर थे।

लडाई मे जब कोई किला या दुर्ग जीत लिया जाता है और जब विजयी फौज के सिपाही अरक्षित बुड्ढो और बच्चो को कत्ल करने तथा लूट मार करने मे हिचकते है तो वहुधा उन सिपाहियो को शराव पिलाने का हुक्म दिया जाता है। तव वे अपने अफसरो का आज्ञा के अनुसार सव तरह का अत्याचार करने पर उतारू हो जाते है।

हर एक आदमी ऐसे लोगो को जानता है जिन्होने अपने किसी दुष्कर्म के परिणामस्वरूप इसलिए शराव पीना शुरू कर दिया कि वे अपना अन्तरात्मा की प्रताडनाओ से वच सके। प्रत्येक व्यक्ति इस वात को देख सकता है कि जो लोग हीन चरित्र के है और जो दुराचार पूर्ण जीवन विताते है वे दूसरे लोगो की अपेक्षा नशाली चीजो

की ओर जल्दी आकर्षित होते हैं। डाकुओ और चोरो के गिरोह, वेश्याएँ और व्यभिचारी पुरुष—सब के सब बिना नशे के जिन्दा नहीं रह सकते।

प्रत्येक व्यक्ति इस बात को जानता और स्वीकार करता है कि अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि की ताडना से बचने के लिए लोग नशीली चीजो का इस्तेमाल करते हैं। वह यह भी जानता है कि कुछ खास प्रकार का अनैतिक जीवन व्यतीत करते समय मनुष्य अपनी अन्तरात्मा को कुण्ठित करने के लिए इन नशीले पदार्थों का इस्तेमाल करता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भी जानता और स्वीकार करता है कि नशो का उपयोग करने से अन्तरात्मा कुण्ठित हो जाती है अर्थात् जब आदमी शराब के नशे मे चूर होता है तब वह ऐसे-ऐसे कामो के करने पर उतारू हो जाता है, होश हवास दुरुस्त होने पर जिनको करने की क्षण के लिए भी कल्पना नही कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति इन बातो को मानता है, लेकिन फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि नशो का इस्तेमाल करने के बाद जब उनका नतीजा चोरी हत्या, बलात्कार तथा इसी तरह के दूसरे जघन्य कर्मो के रूप मे नहीं निकलता, जब नशीली चीजो का इस्तेमाल लोग किसी भयानक अपराध को कर लेने के बाद नहीं करते, बल्कि नशीली चीजो का इस्तेमाल उन लोगो के द्वारा किया जाता है जिनके रोजगारो को हम जघन्य नही ठहराते और जब नशीली चीजो का इस्तेमाल एक साथ बहुत बडी तादाद मे नहीं होता प्रत्युत नियमित रूप मे थोडी-थोडी मात्रा मे होता है तो किसी कारणवश यह मान लिया जाता है कि नशीली चीजो से अन्त करण कुण्ठित नहीं होता।

इस तरह से लोगो का ख्याल है कि एक सम्पन्न घर के स्त्री पुरुष के लिए दोनो समय के भोजन से पूर्व एक-एक गिलास वोडका और भोजन करते समय एक-एक गिलास शराब पी लेने अथवा एक फ्रास-निवासी के लिए एबसिन्थे नामक मदिरा पी लेने या एक अंग्रेज

के लिए वराण्डी अथवा व्हिस्की का एक गिलास ले लेने, या एक जर्मन के लिए लेगर-वीयर नामक शराव का इस्तेमाल कर लेने या एक सम्पन्न घर के चीन निवासी के लिए अफीम की एक हल्की सी मात्रा ले लेने और इन सबके साथ थोडी-सी तम्वाकू की फूके खीच लेने से सिवाय तवीयत खुश हो जाने के और कोई वात नही होनी और इसका लोगो की अन्तरात्मा पर कोई असर नही पडता।

इस प्रकार का नियमित और परिमित नशा करने के वाद यदि लोग कोई जुर्म नही करते, न हत्या करते है और न चोरी, अपनी आदत के मुताविक सिर्फ कुछ वुरे और मूर्खतापूर्ण काम कर डालते है, तो ऐसा समझा जाता है कि ये काम नशे की वजह से नहीं किये गये, वल्कि अपने-आप हो गए है। लोगो का ख्याल है कि नशा करने वाले लोग यदि फौजदारी कानून के खिलाफ कोई जुर्म न करे तो उनके लिए अपनी अन्तरात्मा और विवेक-वुद्धि को कुण्ठित करने का सवाल ही पैदा नही होता है। और उनका जीवन विल्कुल अच्छा जीवन होता है यदि वे नशे न करते होते तो भी ठीक वैसा ही जीवन विताते होते। इसके अतिरिक्त लोगो की यह भी धारणा है कि नशीले पदार्थों का रोजाना इस्तेमाल करने से अन्तरात्मा और विवेक-वुद्धि कुण्ठित नही होती है।

प्रत्येक व्यक्ति इन वातो को निजी अनुभव से जानता है कि शराव अथवा तम्वाकू पीने मे दिमाग की हालत वदल जाती है, नशे की हालत में आदमी उन वुरे कामो को करने से जरा भी नहीं शरमाता जिनकी वह होश मे कल्पना तक नही कर सकता। अन्तरात्मा का हल्की-से-हल्की प्रस्तावना के वाद मनुष्य को किसी नशीली चीज का इस्तेमाल करने का प्रेरणा होनी है और नशे की हालत मे मनुष्य के लिए अपने जावन और परिस्थिति का सिहावलोकन करना तथा उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना कठिन होता है। साथ ही प्रत्येक आदमी इस वात को भी जानता है कि नशीली चीजो के सतत और

नियमित उपयोग का शरीर पर ठीक वही परिणाम होता है जो उनका कभी-कभी एक साथ अत्यधिक मात्रा मे इस्तेमाल करने का होता है। इन बातो के बावजूद, परिमित मात्रा मे शराब का नशा करने वाले और तम्बाकू पीने वाले भलेमानसो को हम यह कहते हुए सुनते है कि वे अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि को कुण्ठित कर लेने के लिए इन चीजो का इस्तेमाल नही करते प्रत्युत बदन मे फुर्ती लाने और चित्त को प्रसन्न करने के लिए ही ऐसा किया करते है।

परन्तु यदि कोई मनुष्य इस विषय पर गम्भीरता के साथ और निष्पक्ष भाव से विचार करेगा—और अपनी बुरी आदतो के बचाव का प्रयत्न नही करेगा—तो उसको सारा मामला स्पष्टतापूर्वक समझ मे आ जायगा। तब उसको पहली बात यह मालूम होगी कि अगर कभी-कभी अधिक मात्रा मे नशा करने से मनुष्य की अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, तो लगातार नियमित रुप से कम अथवा ज्यादा परिमाण मे शराब, तम्बाकू वगैरह पीने से भी वही असर पैदा होता है अर्थात् शराब, तम्बाकू आदि नशीली चीजे पहले तो उसकी दिमागी कार्य-शक्ति को तेज करती है और बाद मे बिल्कुल निस्तेज बना देती है। दूसरी बात उस को यह मालूम होगी कि तमाम नशीली चीजो के अन्दर अन्तरात्मा को कुण्ठित करने का गुण मौजूद होता है। चाहे नशीली चीजो के प्रभाव मे आकर मनुष्य हत्या, डकैती, बलात्कार इत्यादि पाशविक जुर्मो को करे, और चाहे उनका इस्तेमाल करने के बाद वह ऐसे शब्द अपने मुंह से निकाले जिनको वह साधारण हालत में कभी नही निकाल सकता या ऐसी बातो को सोचे और अनुभव करे जिनको वैसा कभी सोच या अनुभव नही कर सकता, इन दोनो हालतो मे नशीली चीजो के अन्दर अन्तरात्मा को कुण्ठित करने और विवेक-बुद्धि पर पर्दा डालने का गुण सर्वदा विद्यमान रहता है। तीसरे उनको यह भी मालूम होगा कि अगर चोरो लुटेरो, वेश्याओ और व्यभिचारियों को अपनी

अन्तरात्मा को कुण्ठित करने के लिए इन नशीली चीजो की आवश्यकता पड़ती है, तो उन लोगो को भी इन चीजो की जरूरत पडती है जो अपनी आत्मा के द्वारा निन्दनीय ठहराये गये धन्धो को करते है फिर चाहे इन धधो को दूसरे लोग समुचित और सम्मानपूर्ण ही क्यो न समझते हों।

सक्षेप में हम कह सकते है कि इस बात को समझे और स्वीकार किये बिना हमारा छुटकारा नही है कि नशीली चीजो के इस्तेमाल करने का एक मात्र कारण, चाहे वह इस्तेमाल कम मात्रा में होता हो चाहे अधिक मात्रा मे, चाहे नियमित रूप से होता हो चाहे कभी-कभी, और चाहे समाज के उच्च वर्गों मे होता हो चाहे निम्न श्रेणी के लोगो मे, वही है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अर्थात् लोग अपनी अन्तरात्मा की आवाज को दबाने की आवश्यकता अनुभव करते है, और वह इसलिए कि वे उस विरोध को न देख सके जो उनके असली जीवन और उनकी अन्तरात्मा के आदेशो के बीच विद्यमान होता है।

(३)

अन्तरात्मा की आवाज को दबाने की आवश्यकता ही नशीली चीजो के ससार-व्यापी इस्तेमाल का एक मात्र कारण है। तम्बाकू के सार्वत्रिक उपयोग की वजह भी यही है। मेरा ख्याल है कि सम्भवत तम्बाकू का ही ससार में सबसे ज्यादा प्रचार है और यही सबसे अधिक हानिकर है।

ऐसा ख्याल किया जाता है कि तम्बाकू पीने से बदन मे एक तरह की फुर्ती आ जाती है, दिमाग साफ हो जाता है। सिर्फ दूसरी आदतो की तरह से ही यह भी मनुष्य को आकर्षित करती है। और इसके जरिये अन्तरात्मा को कुण्ठित करने वाला वह घातक असर भी पैदा नहीं होता जो शराब के पीने से होता है। लेकिन अगर आप ध्यान देकर इस बात को देखे कि किस हालत मे आपको तम्बाकू पीने

की इच्छा होती है तो आपको निश्चय हो जायगा कि तम्बाकू का नशा भी अन्तरात्मा को उसी तरह कुण्ठित कर देता है जिस तरह शराब का नशा करता है। और लोग उसी समय जान-बूझ कर तम्बाकू पीते हैं जिस समय उन्हें अपनी आत्मा को कुण्ठित करने की जरूरत पड़ती है। अगर तम्बाकू के इस्तेमाल से सिर्फ दिमाग साफ होता है या बदन में फुर्ती आती तो लोगों को उसके इस्तेमाल की इतनी तेज इच्छा नहीं होती और यह इच्छा खास अवसरों पर प्रकट होती है। हम लोगों को अक्सर यह कहते हुए भी नहीं सुनते कि हम चाहे बिना भोजन के रह जाय लेकिन तम्बाकू के बिना नहीं रह सकते और नहीं हम लोगों को कभी-कभी सचमुच भोजन पर तम्बाकू को प्रधानता देते हुए देखते हैं।

मैंने ऊपर उस रसोइये का जिक्र किया है जिसने अपनी मालिकिन को मार डाला था। उस रसोइये ने अदालत के सामने बयान देते हुए कहा कि शराब के दो गिलास चढ़ाकर मैं अपनी मालिकिन के सोने के कमरे में घुस गया। उस समय मालिकिन अपने बिछौने पर सोई हुई थी। मैंने उसके गले पर छुरा भोंक दिया। उसके गले में जोरों की गड़गड़ाहट हुई और वह गड़ ड़ ड़ करती हुई बिछौने से जमीन पर गिर पड़ी और खून का फव्वारा फूट निकला। यह देख कर मेरी हिम्मत जाती रही। मेरा होश उड़ गया। मैं उसको पूरी तरह नहीं मार सका। वह छटपटा रही थी। मैं उसके सोने के कमरे में से निकल कर बैठक के कमरे में जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया। वहा मैंने अपनी जेब में से एक सिगरेट निकाल कर पिया। सिगरेट का नशा चढ़ते ही मेरे बदन में फुर्ती आ गई और मेरा दिल फिर से मजबूत हो गया। तब मैं उठ कर वापस सोने के कमरे में चला गया। अब मुझको अपनी मालिकिन का गला काटने में जरा भी झिझक मालूम नहीं हुई। मैंने उसका सिर धड़ से अलग कर डाला। इसके बाद मैं उसके माल असबाब को टटोलने लग गया।

रसोइये के उपरोक्त बयान से यह साफ जाहिर हो जाता है कि उस समय उसके अन्दर सिगरेट पीने का इच्छा इसलिए पैदा नही हुई कि वह अपना दिमाग साफ करना चाहता था, या अपने चित्त को प्रसन्न करना चाहता था, बल्कि इस इच्छा के पैदा होने का कारण यह था कि वह उस वस्तु (अन्तरात्मा) को कुण्ठित करना चाहता था जो उसको हत्या करने से रोक रही थी।

तम्बाकू पीने वाला प्रत्येक मनुष्य इस बात को देख सकता है कि उसके अन्दर तम्बाकू पीने की इच्छा कुछ खास-खास और विशेषतः कठिनाई के अवसरो पर ही पैदा हुआ करती है। मुझको उस समय का भली भाति स्मरण है जब मै स्वय तम्बाकू पिया करता था। जब मुझे उस समय की याद आती है तो मेरे मन में स्वत यह प्रश्न उठने लगता है कि, "मुझको तम्बाकू पीने की विशेष आवश्यकता कब मालूम होती है ?" मुझे तम्बाकू पीने की खास जरूरत उसी समय पड़ा करती थी जब मुझे याद आने वाली किसी बात को मैं याद रखना नही चाहता था—अर्थात् किसी बात को भुलाना चाहता था और उस पर विचार नही करना चाहता था। मै बिना किसी काम के यो ही बेकार बैठा हुआ हू और जानता हू कि मुझको काम में लग जाना चाहिए। परन्तु मेरे मन मे काम करने की इच्छा नही है और इसलिए तम्बाकू पीते हुए यो ही बैठा रहता हू। मैंने एक आदमी को वचन दिया है कि मै ठीक ५ बजे उसके घर पहुच जाऊगा। पर मुझको एक दूसरी जगह बहुत देर हो गई है। मैं जानता हू कि मुझको वहा ठीक समय पर पहुच जाना चाहिए था। पर मै इस बात का स्मरण नही करना चाहता, इस पर सोच विचार करना नही चाहता। इसलिए तम्बाकू पीकर इस बात को भुला देता हूं। मै किसी आदमी से नाराज हो गया हू और उसको झिडकते हुए गालिया दे रहा हू। मै जानता हू कि गलती कर रहा हू और मुझको अपशब्द कहना बन्द कर देना चाहिए। लेकिन मैं

अपने चिडचिडेपन और बदमिजाजी को जारी रखना चाहता हू। इसलिए मै तम्बाकू पी लेता हू और गालिया देने का क्रम जारी रखता हू। मै ताश के पत्तो का जुआ खेल रहा हू। खेलते-खेलते मै हार को भुला देना चाहता हू, और इसलिए तम्बाकू पीने लगता हू। मै कोई खराब काम कर बैठा हू। मैने गलती की है। फलत मेरी अवस्था कि-कर्तव्य-विमूढ की हो गई है। मुझको चाहिए कि अपनी गलती को स्वीकार करके जिस दल-दल मे मै फस गया हू उसमे से अपने आपको बाहर निकाल लू। पर मै अपनी गलती को स्वीकार नही करना चाहता—मै उसके बुरे नतीजे से बचना चाहता हू। अतएव मै उस गलती को दूसरो पर मढता हू और अपने चित्त को शात करने के लिए सिगरेट पीने लगता हू। मै कुछ लिख रहा हू, लेकिन जो कुछ मैने लिखा है, उससे मुझको पूरा-पूरा सन्तोष नही है। मुझे चाहिए कि मै अपना लिखना बन्द कर दू। किन्तु मै अपनी पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार अपने लेख को समाप्त करना चाहता हू। इसलिए मै तम्बाकू पी लेता हू और अपना लेखन कार्य जारी रखता हू। मै किसी के साथ वाद-विवाद कर रहा हू। मै देखता हू कि हम एक दूसरे की बात को समझ नही रहे है और न समझ ही सकते है। परन्तु फिर भी मै अपनी राय जाहिर करना चाहता हू। इसलिए मै बीडी या सिगरेट पीने लगता हू और बात-चीत का सिलसिला जारी रखता हू। तम्बाकू पीने की आवश्यकता से सम्बन्ध रखने वाले इस तरह के सैकडो दूसरे उदाहरण दिये जा सकते है।

दूसरे मादक द्रव्यो की तुलना मे तम्बाकू का एक खास गुण है कि उसके द्वारा मनुष्य बहुत आसानी के साथ प्रमत्त बन सकता है, वह प्रकटत निर्दोष प्रतीत होती है और उसका प्रयोग मनुष्य अपने को अशान्ति पहुचाने वाले छोटे-छोटे और पृथक-पृथक मौकों पर कर सकता है। इस बात को कौन नही जानता कि शराब, अफीम

और भाग का नशा करने के लिए कुछ ऐसे साधनो और चीजो की आवश्यकता पडा करती है जो हर समय सुलभ नही होते ? लेकिन तम्बाकू के लिए ऐसे साधनो की कोई आवश्कता नही होती। मनुष्य जेब में बीडी, सिगरेट, या चिलम-तम्बाकू और दियासलाई डालकर हर जगह घूम फिर सकता है। साथ ही इस बात को भी सब लोग जानते है कि शराबियो और अफीमचियो को लोग घृणा की दृष्टि से देखते है जब कि तम्बाकू पीने वालो के प्रति हमारे मन मे कोई विशेष घृणा का भाव जागृत नही होता। दूसरी नशीली चीजो की अपेक्षा तम्बाकू मे एक खास गुण यह है कि जहा शराब, अफीम या कोकीन का असर एक विशेष अवधि के बीच पैदा होने वाले तमाम विचारो और कार्यो पर पडता है, वहा तम्बाकू के नशे का उपयोग एक घटना विशेष के लिए किया जा सकता है। आप एक ऐसा काम करना चाहते है जो घटना विशेष मे आपको नही करना चाहिए इसलिए आप एक बीडी अथवा सिगरेट पीकर अपनी विवेक-बुद्धि पर उतने अश तक पर्दा डाल देते है जितने अश तक कि आप मे इतना सामर्थ्य आ जावे कि आप न करने योग्य काम को करने मे हिच-किचाहट महसूस न करें। तब आपके बदन मे फुर्ती आ जाती है और आप पुन स्पष्टतापूर्वक बोलने और विचारने लगते है। अथवा आपको महसूस हो रहा है कि आपने एक ऐसा काम कर डाला जिसे आपको नही करना चाहिए था। इस समय आप बीडी या सिगरेट सुलगाकर अपने मुह मे रख लेते है। फौरन अपनी गलती अथवा बुरे काम की दु खद स्मृति आपके अन्दर से गायब हो जाती है और आप दूसरे कार्यो मे व्यस्त हो जाते है, उस बात को भुला देते है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोग रोजमर्रा की आदत को पूरा करने अथवा समय अच्छा तरह काटने के लि तम्बाकू का नशा नही किया करते, बल्कि प्रत्येक तम्बाकू पीने वाला तम्बाकू इसलिए पीता है कि वह तम्बाकू को अपनी अन्तरात्मा को

कुण्ठित करने का एक साधन मानता है और इसका नशा कर लेने पर उसको उन बुरे कामो का स्मरण नही आता जिनको उसने किया है अथवा जिन्हे वह करने जा रहा है। इसके बाद क्या यह बात लोगो की समझ मे नही आती कि मनुष्यो की जीवन-चर्या और उनको तम्बाकू पीने की लालसा मे कोई मजबूत और निश्चित सम्बन्ध है ?

छोटे-छोटे लडके तम्बाकू पीना कब शुरु करते है ? आम तौर पर तब जबकि उनकी बालोचित सरलता जाती रहती है। क्या वजह है कि ज्यो ही तम्बाकू पीने वाले अच्छे पुरुषो की सगति म उठने-बैठने लगते है त्योही वे तम्बाकू पीना छोड देते है ? और क्या वजह है कि ज्योही उनका पुन. दुराचारपूर्ण परिस्थितियो से पाला पडता है त्योही फिर वे तम्बाकू पीने लग जाते है ? क्या कारण है कि करीब-करीब सारे के सारे जुवारी तम्बाकू पीते है ? क्या कारण है कि नियमित और सात्विक जीवन व्यतीत करने वाले स्त्री-पुरुष तम्बाकू के पास तक नही फटकते ? क्या वजह है कि वेश्याये और सारे-क-सारे पागल मनुष्य तम्बाकू पीते है ? यह सच है कि किसी चीज की आदत पड जाने पर मनुष्य को उस चीज का इस्तेमाल करने की समय-समय पर याद आ जाया करती है। लेकिन प्रकटत अन्तरात्मा को कुण्ठित करने की लालसा के साथ तम्बाकू के नशे का एक स्पष्ट और निश्चित सम्बन्ध है और इस नशे से जिस बात की आशा रक्खी जाती है उसको यह पूरा करता है।

कोई भी मनुष्य प्रत्येक तम्बाकू पीने वाले आदमी का ध्यान-पूर्वक अवलोकन करके इस बात का पता लग सकता है कि तम्बाकू का नशा अन्तरात्मा की आवाज को किस हद तक दबाता है। तम्बाकू पीने वाला हरएक आदमी जब उसके अन्दर तम्बाकू पीने की इच्छा पैदा होती है तो, सामाजिक जीवन के उन अत्यन्त प्राथमिक कर्तव्यो को भूल जाता है अथवा उनकी उपेक्षा करता है जिनके पालन की

वह दूसरे लोगो से आशा रखता है और जिनका पालन वह तब तक बराबर करता है जब तक कि तम्बाकू पीकर वह अपनी अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि को कुठित नहीं कर डालता। औसत दर्जे का प्रत्येक शिक्षित मनुष्य इस बात को अपने लिए अनुचित, अशिष्टतापूर्ण और अमानुषिक समझता है कि वह सुख सुविधा के लिए दूसरे लोगो के आराम तथा शान्ति मे खलल डाले और दूसरो के स्वास्थ्य को नुकसान पहुचावे। किसी भी आदमी को इस बात का ख्याल नही आवेगा कि जिस कमरे में बहुत से लोग बैठे हो उसको वह यकायक पानी से गीला करदे, न उसको इस बात का ही विचार आवेगा कि वह वहा शोर मचावे, चिल्लावे अथवा उस कमरे के अदर ठण्डी, गरम या दुर्गन्ध पूर्ण वायु को आने दे अथवा कोई ऐसा दूसरा काम करे जिससे अन्य व्यक्तियो को असुविधा झेलनी पडे अथवा उनका नुकसान हो जाय। लेकिन एक हजार तम्बाकू पीने वालो मे से एक भी आदमी ऐसा नही निकलेगा जो ऐसे कमरे मे अस्वास्थ्यकर एवम बदबूदार धुआ पैदा करने में सकोच अनुभव करे कि जिसकी हवा में तम्बाकू न पीने वाली स्त्रिया और बच्चे साम लेते है।

ऐसे मौको पर शिष्टाचार की दृष्टि से तम्बाकू पीनेवाले लोग दूसरे उपस्थित व्यक्तियो से कहा करते है मै तम्बाकू पीलू? आपको कुछ आपत्ति तो नही है? लेकिन इस प्रकार के प्रश्न करने वाले प्रत्येक मनुष्य को इस बात का दृढ विश्वास होता है कि उसके प्रश्न का दूसरे लोगो की ओर से साधारणत यही उत्तर मिलेगा कि बडे शौक से पीजिये, हमें जरा भी आपत्ति नही है। यद्यपि तम्बाकू पीनेवाले इसतरह तम्बाकू पीने के लिए दूसरे लोगो की स्वीकृति प्राप्त कर लेते है तथापि इससे यह नही कहा जा सकता कि तम्बाकू पीने वाले लोगो को दुर्गन्धित वायु मे साम लेने मे तकलीफ नही होती है और मेज तश्तरी आगन अथवा खिडकी में सिगरेट और बीडी के बदबूदार टुकडों को इधर-उधर पडा देखकर उन्हे कष्ट नही होता। इसके अतिरिक्त अगर इस

बात को मान भी ले कि बड़ा उम्र के स्त्री-पुरुषों ने तम्बाकू पीने के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं की तो भी इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि उन छोटे-छोटे बच्चों को तम्बाकू के धुए में सास लेने से आराम मिलता है अथवा यह उनके स्वास्थ्य के लिये लाभदायक हो सकता है, जिनकी तम्बाकू पीने के बारे में अनुमति कभी मागी ही नहीं जाती। फिर भी समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो दूसरी दृष्टि से सम्मान और मनुष्यता-पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए भी छोटे-छोटे रसोई-घरों में बच्चों के साथ बैठकर भोजन करते समय तम्बाकू पीने में सकोच नहीं करते और इस प्रकार सम्पूर्ण कमरे की हवा को तम्बाकू के धुए से जहरीला बना देते हैं और फिर भी अपनी अन्त-रात्मा की हलकी चुटकी अनुभव नहीं करते।

साधारणत यह बात कही जाती है और मैं भी ऐसा ही कहा करता था कि तम्बाकू पीने से आदमी को दिमागी काम करने में मदद मिला करती है। यदि हम किसी व्यक्ति के बौद्धिक कार्य के केवल परिमाण का ही विचार करें—और उसके गुण-दोष की तरफ कोई ध्यान न दें—तो यह कथन बिल्कुल सत्य है। जो आदमी तम्बाकू पीता है और तम्बाकू पीने के परिणामस्वरूप जो अपने विचारों को अच्छी तरह से तौल नहीं सकता और न उनका वास्तविक मूल्य ही आक सकता है उनको तम्बाकू पीते ही फौरन ऐसा मालूम होता है मानो उनके मस्तिष्क में असख्य विचार उपस्थित है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि दरअसल उसके दिमाग में बहुत से विचार है बल्कि वास्तविक बात यह है कि अपने विचारों पर उसका नियत्रण नहीं रह गया है।

जब कोई आदमी किसी काम को करता है तो उसको हमेशा इस बातका भान रहता है कि उसके अन्दर दो प्राणी हैं—एक वह जो स्वय काम करता है और दूसरा वह जो उस काम के गुण-दोष का विवेचन किया करता है। गुण-दोष का यह विवेचन जितने अश तक ठीक-ठीक

आर सही होगा उतने ही अश तक वह कार्य उत्तम होगा और मन्द-मन्द गतिसे आगे बढेगा। लेकिन इसमे विपरीत अवस्था मे परिणाम बिल्कुल उलटा होगा। यदि गुण-दोष का विवेचन करनेवाले अग की विवेक बुद्धि किसी चीज से कुण्ठित हो गई है तो कार्य का परिमाण अधिक होने पर भी वह गुण की दृष्टि मे उतना अच्छा नही हो सकता।

आमतौर पर लोग यह कहते हुए सुने जाते है, और मै भी किसी जमाने मे ऐसा कहा करता था कि अगर मै तम्वाकू न पाऊ तो मै कुछ भी नही लिख सकता। मेरी कलम रुक जाती है। मै लिखना शुरु करता हू लेकिन दो-चार पक्तिया लिखने के बाद मेरा हाथ आगे नही बढता- इस कथन का वास्तविक तात्पर्य क्या है ? इस कथन का मतलब यह है कि या तो तुम्हारे पास लिखने लायक कोई बात ही नही है, या फिर जिस बात को तुम लिखना चाहते हो वह तुम्हारे मनमे अभी परिपक्व नही हो पाई है बल्कि वह अभी सिर्फ अस्पष्ट रूप मे तुमको दिखलाई पडने लगी है। जब तुम तम्वाकू पिये हुए नही होते तो तुम्हारी दोष-विवेचक शक्ति तुमको यह बतला देती है। ऐसी अवस्था मे अगर तम्वाकू न पिओ तो या तो तुम अपना शुरु किया हुआ लेखन कार्य बन्द कर दोगे या तुम तब तक के लिए धैर्य धारण कर लोगे जबतक कि तुम अपने विचार का अपने मस्तिष्क मे स्पष्ट न करलो। तुम्हारे दिमाग मे अस्पष्टतापूर्वक जो विचार आया होगा उसकी गहराई मे उतरने का प्रयत्न करोगे, ऐसा करते समय जो बाधाए आयेगी उन पर विचार करोगे और अपना सम्पूर्ण ध्यान उस विचार को स्पष्ट करने मे लगा दोगे। लेकिन ज्यों ही तुम तम्वाकू पी लेते हो तुम्हारी गुण-दोष विवेचक शक्ति कुण्ठित हो जाती है और उसके साथ साथ तुम्हारे लिखने के मार्ग मे आने वाली बाधाए भी दूर हो जाती है। तम्वाकू पीकर प्रमत्त बनने से पहले जो बात तुम को निरर्थक मालूम होती थी, वह अब तुम्हे महत्त्वपूर्ण मालूम होने लगती है। पहले जो बात अस्पष्ट दिखलाई देती थी वह अब वैसी प्रतीत नही

होती, पहले जो बाधाए नजर आती थी वे सब गायब हो जाती है, और तुम लिखने का कार्य शुरू कर देते हो और शीघ्र गति से पन्ने के-पन्ने लिख डालते हो ।

(४)

जब हम थोडी मात्रा मे शराब या तम्बाकू पीते है तो उसका नशा भी हमे बहुत थोडी मात्रा मे चढता है। अब सवाल यह है कि इस हल्के नशे से हमारे शरीर मे जो थोडा सा—अत्यन्त अल्प—परिवर्तन हो जाता है, क्या वह किन्ही महत्त्वपूर्ण परिणामो को उत्पन्न कर सकता है ? आमतौर पर यह कहा जाता है कि "अगर कोई आदमी इतनी अधिक तम्बाकू या गाजा पीता है या शराब का इतना अधिक नशा करता है कि वह धरती पर गिर पडे और बेहोश हो जाय तो इसके परिणाम जरूर भयंकर हो सकते है । लेकिन जो आदमी थोडी सी तम्बाकू या शराब पीकर हल्का नशा किया करता है, उसके लिए निश्चय ही ऐसे गम्भीर परिणाम कभी नही निकल सकते ।" लोगो की आज-कल ऐसी धारणा बन गई है कि हल्का नशा कर लेने —थोडी-सी शराब और तम्बाकू पी लेने—और अपनी विवेक-बुद्धि पर थोडा-सा पर्दा डाल देने से कोई महत्त्वपूर्ण असर नही पडता । लेकिन उनकी यह धारणा ठीक वैसी ही है जैसी किसी मनुष्य की यह धारणा कि घडी को पत्थर पर जोरो से पटक देने से घडी को नुकसान हो सकता है, लेकिन यदि घडी के अन्दर थोडी सी बारीक धूल घुस जाने दी जावे तो घडी को किसी तरह का नुकसान नही पहुच सकता ।

लेकिन प्यारे पाठको ? आप इस बात को हमेशा स्मरण रखिये कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का सचालन हाथो, पैरो अथवा पीठ के द्वारा नही बल्कि अन्तरात्मा के द्वारा होता है। क्योकि अन्तरात्मा में एक खास उथल-पुथल होने पर ही कोई आदमी अपने हाथो अथवा पैरो

के द्वारा किसी कार्य को करने लगता है। यह उथल-पुथल ही मनुष्य के समस्त भावी कार्यों की दिशा निर्धारित करती है। फिर भी इस प्रकार की उथल-पुथल हमेशा अत्यन्त सूक्ष्म और करीब-करीब अगोचर होती है।

ब्रूलोफ* ने एक दिन अपने एक शिष्य द्वारा निर्मित चित्र में थोडासा सुधार किया था। शिष्य की नजर ज्यो ही उस परिवर्तित चित्र पर पडी, त्यों ही वह जोर से बोल उठा—"ओह, आपने तो इस को जरा-सा छुआ ही था। लेकिन अब तो यह बिल्कुल दूसरी ही चीज बन गई है।" ब्रूलोफ ने उत्तर दिया, "छोटी-छोटी रेखाओ मे ही कला का आरम्भ होता है।"

ब्रूलोफ का उपरोक्त कथन न सिर्फ कला के सम्बन्ध मे, बल्कि सम्पूर्ण मनुष्य जीवन के सम्बन्ध मे सर्वथा सत्य है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि छोटी-छोटी बातो से ही सच्चे मनुष्य-जीवन का आरम्भ होता है—अर्थात् जो बात हम को अत्यन्त सूक्ष्म मालूम होती है और जो परिवर्तन हमे अतीव अल्प दिखाई पडते है, उन्ही से सच्चे मनुष्य जीवन का आरम्भ होता है। जहा बडे-बडे बाह्य परिवर्तन होते है—लोग इधर-उधर दौडते-भागते है, झगडते है। दगा-फसाद करते है और एक दूसरे की हत्या करते है—वहा सच्चे मनुष्य-जीवन का अस्तित्व असम्भव है। बल्कि सच्चा मनुष्य-जीवन वही सम्भव है जहा मनुष्यों के जीवन मे छोटे, अत्यन्त छोटे और सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तन हुआ करते है।

---

*के पी ब्रूलोफ रूस का एक सुप्रसिद्ध चित्रकार था। उसका जीवन काल सन् १७९९-१८५२ था।

रास्कोल्निकोफ*का जीवन उस समय सच्चा जीवन नही था, जब उसने बुढिया औरत अथवा उसकी बहिन की हत्या की। जब उसने उस बुढिया की— और विशेषत जब उस बुढिया की बहिन की—हत्या की, तब यह उसका सच्चा जीवन न था। उसने एक मशीन की भांति वही कार्य किया जिसे किये बिना वह रह नही सकता था—अर्थात् वह दीर्घ काल से पिस्तौल मे भरे हुए कारतूस को छोड कर ही रहा। एक बुड्ढी औरत की वह हत्या कर चुका था, दूसरी उसके सामने खडी थी और वह अपने हाथ मे कुल्हाडा लिये हुए था।

रास्कोल्निकोफ उस समय सच्चा मनुष्य जीवन नही बिता रहा था, जब कि उस बुढिया औरत की बहिन से उसका साक्षात्कार हुआ था। बल्कि वह तभी सच्चा और मनुष्योचित जीवन बिता रहा था जब उसने किसी बुड्ढी औरत की हत्या नही की थी, न किसी की हत्या करने के सकल्प से किसी अपरिचित व्यक्ति के घर मे कदम नहीं रक्खा था, अपने हाथ मे कुल्हाडा नही पकडा था और अपने ओवरकोट के भीतर की तरफ को लटकाने के लिए रस्सी का फन्दा नही बाधा था। निस्सन्देह वह उस समय सच्चा मनुष्योचित जीवन बिता रहा था जब वह अपने कमरे मे गद्दे पर लेटे-लेटे इस बात पर विचार कर रहा था कि उसको पीटर्सबर्ग मे रहना चाहिए अथवा नही तथा उसको अपनी मा से अपने खर्च के लिए द्रव्य लेना चाहिए अथवा नही, और साथ ही तरह-तरह की दूसरी समस्याओ पर—जिनका उस बुड्ढी औरत से कतई कोई सम्बन्ध नहीं था—विचार करने मे वह तल्लीन था। उस समय उसको उस बुड्ढी औरत का अणुमात्र खयाल नही था, न उसके मन में यह विचार ही उत्पन्न हुआ था कि क्या यह न्याय्य

---

*डास्टोवस्की के "क्राइम एड पनिशमेण्ट नामक उपन्यास का नायक। इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद "पवित्र पापी" के नाम से गंगा पुस्तक माला, लखनऊ से प्रकाशित हो चुका है।

और उचित है कि एक मनुष्य की इच्छा-पूर्ति के लिए दुनिया से दूसरे अनावश्यक और हानिकर मनुष्य का नामोनिशा मिटा दिया जाय। लेकिन इसके कुछ ही क्षण बाद उसने इस प्रश्न का—उस मानसिक प्रदेश मे जो मनुष्य के शारीरिक कार्यों से बिल्कुल स्वतंत्र होता है—निपटारा कर दिया कि वह उस बुढिया औरत को मार डालेगा अथवा नही। इस प्रश्न का निपटारा उस समय नही हुआ जब कि वह एक बुढिया औरत की हत्या कर चुका था और हाथ में कुल्हाडा लिये हुए दूसरी बुढिया औरत के सामने खडा था। बल्कि इस प्रश्न का निपटारा उसी समय हो चुका था जब वह गद्दे पर चुपचाप, बिना हाथ पैर हिलाये-डुलाये बैठा-बैठा मन-ही-मन कुछ सोच-विचार कर रहा था। उस समय उसकी अन्तरात्मा कार्य मे सलग्न था और उस अन्तरात्मा मे सूक्ष्म—हा, अत्यन्त सूक्ष्म—परिवर्तन और उलट फेर हो रहे थे। इस तरह के अवसरो पर मनुष्य को स्पष्ट एवम स्वच्छ विचार सब-से बडी आवश्यकता हुआ करती है ताकि वह अपने सामने उपस्थित समस्या पर ठीक-ठीक और यथार्थ निर्णय दे सके। और यदि ठीक इस प्रकार के अवसरो पर शराब का एक गिलास या एक सिगरेट अथवा एक बीडी पी ली जाय तो उस समस्या के हल होने में बाधा उपस्थित हो जाती है, मनुष्य का निर्णय कार्य स्थगित हो जाता है, अन्तरात्मा और विवेक बुद्धि कुठित हो जाती है और मनुष्य जल्दबाजी मे आकर ऐसा निर्णय कर डालता है जो मनुष्योचित नहीं बल्कि मनुष्य की हीन अर्थात् पशु-प्रकृति के अनुकूल होता है, जैसा कि रास्कोल्निकोफ के उदाहरण मे हुआ।

ऐसे अवसरो पर अन्तरात्मा मे होने वाले उलट-फेर और परिवर्तन सूक्ष्म और अत्यन्त सूक्ष्म होते है, लेकिन इन परिवर्तनो के जो परिणाम होते है वे अत्यन्त विशाल और भीषण होते है। जब मनुष्य किसी बात का निश्चय करके तदनुसार कार्यारम्भ कर देता है तो उसके परिणामस्वरूप ससार मे अनेक भौतिक परिवर्तन हो सकते है।

उदाहरणार्थ घर-बार, धन-दौलत और लोगो के शरीर नष्ट हो सकते है। लेकिन फिर भी मनुष्य की अन्तरात्मा के गूढतम आदर्शों मे जो बात छिपी हुई थी उससे बढकर महत्त्वपूर्ण घटना घटित नही हो सकती। भौतिक जगत मे जो-कुछ होने वाला होता है, अन्तरात्मा पहले से उसकी मर्यादाए निश्चित कर देती है।

लेकिन अन्तरात्मा मे होने वाले इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म उलट-फेरो और परिवर्तनो से ही कल्पनातीत महत्त्व रखने वाले अनगिनत परिणाम पैदा हो सकते है।

मेरे उपर्युक्त कथन मे पाठक इस बात का अन्दाजा हर्गिज न लगावे कि यहा पर मै जो कुछ कह रहा हू उसका सकल्प-स्वातन्त्र्य अथवा निश्चयवाद (determinism) से किसी तरह का कोई सम्बन्ध है। जहा तक मेरे अभिप्राय का सम्बन्ध है वहा तक मै कह सकता हू कि इस प्रश्न पर वाद-विवाद करना बिल्कुल व्यर्थ है। दूसरी समस्याओ के लिए भी सकल्प स्वातन्त्र्य अथवा निश्चयवाद सम्बन्धी वाद-विवाद मे पडने से कोई लाभ प्राप्त नही हो सकता। मै इस प्रश्न का निपटारा करने नही बैठा हू कि कोई आदमी अपने मनोवाछित सकल्प के अनुसार कार्य कर सकता है अथवा नही, क्योकि मेरी सम्मति मे इस प्रश्न को इस रूप मे लोगो के सामने रखना ही गलत है। बल्कि मै तो सिर्फ यह कह रहा हू कि जब अन्तरात्मा मे होनेवाले इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म उलट-फेरो और परिवर्तनो का मनुष्यो के कार्यो पर इतना अधिक प्रभाव पडता है, तो यह बात स्पष्ट है कि [चाहे हम इस बात को माने या न माने कि इच्छा-स्वातन्त्र्य (Free-will) का अस्तित्व है अथवा नही] हमे अपनी अन्तरात्मा की उस अवस्था के विषय मे जिसमे कि सूक्ष्म उलट-फेर हुआ करते है उसी तरह विशेष रूप से जागरूक और सावधान रहना चाहिए जिस तरह किसी चीज को तराजू से तौलते समय हम पहले तराजू के बारे में जागरूक और सतर्क रहते है। जहा तक हमारा बस चले वहा तक

हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम स्वय अपने आपको और दूसरे लोगो को ऐसी अवस्था मे रखने का प्रयत्न करें जिसमे अन्तरात्मा की निर्दोष प्रकृति के लिए विचारो की जो स्पष्टता और सूक्ष्मता आवश्यक होती है वह खडित न होने पावे। हम को इसके प्रतिकूल आचरण नही करना चाहिए। अर्थात् नशीली चीजो का इस्तेमाल करके अन्तरात्मा के कार्य मे वाधा डालने अथवा उसे अस्तव्यस्त करने की कोशिश नही करना चाहिए।

क्योंकि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक और पाशविक दोनो तरह के प्राणी विद्यमान है। किसी घडी को हम दो तरह से चला सकते है— एक ता उसके काटो को घुमाकर और दूसरे उसके मुख्यचक्र को चावी लगा कर। इसी तरह मनुष्य भी दो तरह के प्रभावो मे आकर काम कर सकता है—अर्थात् या तो उन वातो के प्रभाव मे आकर जो उसके आध्यात्मिक अश पर असर डालती है, या उन वातो के प्रभाव में आकर जो उसके शारीरिक अश पर प्रभाव डालती है। लेकिन जिस तरह घडी के लिए यह वात उत्तम है कि उसको उसके अन्दर के यन्त्रों द्वारा परिचालित किया जाय, उसी तरह मनुष्य के अपने लिए या दूसरे के लिए यह वात सर्वथा उचित है कि वह अपने कार्यों का सचालन अपनी अन्तरात्मा के आदेशानुसार करे। और जिस प्रकार घडी के उस पुर्जे की मनुष्य को विशेष रूप से सावधानी रखनी पडती है जिससे कि वह घडी के आन्तरिक यत्रो का भली-भाति सचालन करता है, उसी तरह मनुष्य को अपनी अन्तरात्मा को पवित्र और स्पष्ट और निर्मल रखने के लिए सब से अधिक सावधान रहना चाहिए क्योंकि अन्तरात्मा ही मनुष्य के समस्त अगो को कार्य प्रवृत्त करती है। इस वारे में किसी तरह की शका पैदा नही हो सकती। हर एक आदमी इस वात को जानता है। लेकिन फिर भी लोगो को अपनी अन्तरात्मा को धोखा देने की आवश्यकता पड जाया करती है। लोग इस बात के लिए इतने उत्सुक नहीं होते कि उनकी अन्तरात्मा ठीक

प्रकार से कार्य करे, जितन इस बात के लिए कि जो कुछ कार्य वे किया करते हैं वह उनको सर्वदा उचित प्रतीत हो। इसलिए वे जान-बूझ कर ऐसी नशीली चीजो का इस्तेमाल करते हैं जो उनकी अन्तरा-त्मा के ठीक प्रकार से कार्य करने मे बाधा पहुचाने वाली होती हैं।

(५)

लोग इसलिए कभी-कभी शराब या तम्बाकू नही पीते कि सुस्ती दूर हो, फुर्ती आ जाय। यह बात भी नहीं कि नशा करने में आनन्द आता है। असल में वे अन्तरात्मा की आवाज को मद करने के लिए नशा करते हैं। और यदि वास्तविकता यही हो तो, इसके परिणाम कितने भयकर हो सकते हैं। जरा सोचिए तो उस इमारत की क्या दशा होगी यदि उसको बनाने वाले लोग दीवार को सीधी बनाने के लिए सीधी और सख्त नीव बनावे, बल्कि नरम नीव भरें जो दीवार के बाके-तिरछेपन के अनुसार आगे पीछे हो जाय; अथवा सही कोण बनाने के लिए समचौरस जमीन के टुकडे काटने के बजाय ऐसे टुकड़े काट डालें जो बाके –तिरछे कैसे भी कोण के अनुकूल घटाये-बढ़ाये जा सकें।

किन्तु नशा करने की आदत की बदौलत जीवन मे ठीक यही हो रहा हैं। जीवन अन्तरात्मा के अनुसार नहीं होता तो अन्तरात्मा को जीवन के अनुसार ढाल लिया जाता है।

व्यक्तियों के जीवन में यह हो रहा है और सारी मानव जाति के जीवन में भी यही हो रहा है, क्योकि आखिर मानव जाति का जीवन भी व्यक्तियो के जीवन ही से तो बना है।

अपनी अन्तरात्मा को नशीली वस्तुओ का शिकार बनाने के सम्पूर्ण महत्त्व को समझने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की विविध आध्यात्मिक अवस्थाओं को सावधानी केसाथ याद करना चाहिए। हर एक व्यक्ति को ज्ञात ही होगा कि

उसके जीवन के प्रत्येक काल में कुछ खास नैतिक प्रश्न उपस्थित हुए थे, जिनको उसे हल करना चाहिए था और जिनके हल होने पर भी उसके जीवन का समस्त हित निर्भर करता था। इन प्रश्नो को हल करने के लिए चित्त की भारी एकाग्रता की आवश्यकता थी, चित्त को इस प्रकार एकाग्र करना एक प्रकार का श्रम होता है। हर प्रकार के श्रम मे खास कर प्रारम्भ में ऐसा समय आता है जब काम मुश्किल और कष्टदायक प्रतीत होता है और जब मानव दुर्बलता उस काम को छोड़ देने की प्रेरणा करती है। शारीरिक कार्य प्रारम्भ मे कष्टदायक प्रतीत होता है, मानसिक कार्य और भी अधिक कष्टदायक प्रतीत होता है। जैसा कि लेसिंग ने लिखा है, जहा विचार कठिन होने लगता है वहा स्वभावतः लोग सोचना बन्द कर देते हैं, किन्तु मैं यह कहता हूँ उसी जगह सोचने का काम लाभदायक होने लगता है। मनुष्य अनुभव करता है कि उसके सामने जो प्रश्न है उनको हल करने के लिए श्रम की—बहुधा कष्टदायक काम की—आवश्यकता होगी और वह ऐसी मेहनत से बचना चाहता है। यदि उसके पास अपनी बौद्धिक शक्तियो को प्रमत्त बनाने के साधन न हो तो अपने सामने उपस्थित प्रश्नो को वह भुला नही सकता और उनको हल करने की आवश्यकता बलात् उसके सामने आ खडी होगी। किन्तु मनुष्य को ऐसे साधन का ज्ञान होता है, जिसके द्वारा वह इन प्रश्नो को अपने सामने से हटा दे सकता है और वह उस साधन का उपयोग करता है। ज्योही उसके सामने हल होने के लिए प्रश्न उपस्थित होते हैं और उसे सताने लगते है, वह इस साधन का उपयोग करता है और कठिन प्रश्नो के कारण पैदा होने वाली अशान्ति से बच जाता है। उन प्रश्नो को हल करवाने के लिए अन्तरात्मा की पुकार रुक जाती है और जब तक ज्ञानोदय का नया काल नही आता वे प्रश्न ज्यो-के-त्यो बिना हल हुए पडे रहते हैं। किन्तु जब ज्ञानोदय का काल आता है तो वही क्रिया पुन दुहराई जाती है और मनुष्य

महीनो सालो यहा तक कि सारी उम्र इन नैतिक प्रश्नो के सामने खडा रहता है और उनको हल करने की दिशा मे एक कदम भी आगे नही बढता। फिर भी इन प्रश्नो के हल होने पर ही जीवन की सारी गति निर्भर करती है।

एक आदमी है जो बहुमूल्य मोती प्राप्त करने के लिए किसी तलैया के गन्दे पानी का पेंदा देखना चाहता है किन्तु वह पानी में घुसना पसन्द नही करता और हर बार जब गन्दलापन बैठने लगता है और पानी निर्मल होने लगता है तो वह उसको हिला देता है। मनुष्य के जीवन मे भी यही होता है। बहुत से मनुष्य जीवन भर नशा करते रहते है और जीवन के जिस स्पष्ट और असगत दृष्टिकोण को एक बार अपना लेते है उसी के साथ चिपटे रहते है और जब कभी प्रकाश का काल आता है तो हरबार उसी दीवार से टकराते है जिससे वह दस या बीस वर्ष पहले टकरा चुके थे, जिसको वे तोड नही पाते क्योकि वे विचार की उस तीक्ष्णता को कुण्ठित बना लेते है जिसके द्वारा कि उस दीवार को तोडा जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य को उन वर्षो की अपनी अवस्था पर विचार करना चाहिए जिनमें वह शराब या तम्बाकू पीता था। उसे दूसरे लोगो के अनुभव से भी इन बारे मे सोचना चाहिए। उसे ज्ञात होगा कि जो लोग नशा करते है और जो लोग नशा नही करते उनके बीच एक निश्चित अन्तर है। मनुष्य जितना ही अधिक नशा करता है, उतना ही नैतिक निगाह से वह जड होता है।

[६]

जैसा कहा जाता है अफीम और गाजे के नशे का व्यक्तियो पर भयकर असर होता है। हम को मालूम है कि खुलकर पीने वाले शराबियो के लिए शराब के क्या परिणाम होते है। किन्तु बहुसख्यक

आदमी और खास कर हमारे पढे-लिखे कहलाने वाले लोग शराब आदि मादक द्रव्यों और तम्बाकू का थोडी-थोडी मात्रा मे जो सेवन करते है, और जिसमे कोई हर्ज नही समझा जाता उसका हमारे सारे समाज के लिए कही अधिक भयकर परिणाम होता है।

यदि हम इस बात को मान ले, और हमे मानना पडेगा कि राजनीतिक, सरकारी, वैज्ञानिक, साहित्यिक और कला सम्बन्धी कार्य जिनसे समाज का पथ-प्रदर्शन होता है, अधिकतर ऐसे लोगो द्वारा किये जाते है, जिनके दिमाग की हालत सामान्य नही होती, अर्थात् वे शराब पिये हुए होते है, तो स्वभावत इसके परिणाम भयकर होगे।

आमतौर पर यह खयाल किया जाता है कि सम्पन्न वर्गों के अधिकाश लोगो की भाति जो आदमी भोजन के समय हर बार मादक द्रव्य का सेवन करता है, वह दूसरे दिन काम के समय बिल्कुल सामान्य और होश की हालत मे आ जाता है। किन्तु यह खयाल बिल्कुल गलत है। जिस आदमी ने कल शराब का एक गिलास पिया होता है दूसरे दिन आम तौर पर वह अलसाई हुई हालत मे होता है, उसके शरीर के अवयव ढीले पड जाते है, क्योकि उत्तेजना के बाद ऐसा होता भी है। इस प्रकार उसका दिमाग भी थक जाता है और तम्बाकू पीने मे इस हालत मे वृद्धि ही होती है। जो आदमी थोडी मात्रा मे नियमित शराब या तम्बाकू पीता है, उसके दिमाग को ठीक हालत में लाने के लिए उसको कम-से-कम एक सप्ताह या इससे भी अधिक समय तक शराब और तम्बाकू से दूर रहना होगा, किन्तु ऐसा शायद ही कभी होता है।

किन्तु जो लोग शराब और तम्बाकू नही पीते, वे नैतिक निगाह से बहुधा उन लोगो से निम्न सतह पर क्यो होते है जो शराब और तम्बाकू पीते है। और क्या कारण है कि जो शराब और तम्बाकू पीते है वे बहुधा मानसिक और नैतिक दोनो प्रकार के उच्चातिउच्च

गुणों का परिचय देते हैं।

इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो हम यह नहीं जानते कि जो शराब और तम्बाकू पीते हैं, वे यदि इन पदार्थों का सेवन न करते होते तो कितने ऊंचे उठे हुए होते। दूसरे नैतिक-गुण सम्पन्न मादक द्रव्यों के हानिकर प्रभाव के बावजूद यदि बड़े-बड़े काम कर जाते हैं तो इसीसे यह सिद्ध हो जाता है कि यदि मादक द्रव्यों का सेवन न करते होते तो और भी बड़े बड़े काम करने में समर्थ हुए होते। जैसा कि एक मित्र ने मुझे बताया कि बहुत सम्भव है कि कि काण्ट यदि इतनी अधिक तम्बाकू न पीता होता तो उसके अन्य ग्रन्थ इतने अजीब और बुरे तरीके से न लिखे गये होते। आखिरी बात यह है कि जितना ही मनुष्य का मानसिक और नैतिक धरातल नीचा होगा उतना ही वह अपनी जीवनचर्या और अन्तरात्मा के बीच कम संघर्ष अनुभव करेगा और इसलिए उसको नशीली वस्तुओं की भी कम आवश्यकता होगी। इसके विपरीत यही कारण है कि जो लोग भावुक स्वभाव के होते हैं, उन्हें अपने जीवन और अन्तरात्मा के द्वन्द का फौरन अनुभव होता है और वे उद्विग्न हो जाते हैं और बहुधा मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं और उनके द्वारा विनष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार हमारे समाज में जो काम होते हैं, चाहे उनको करने वाले हमारे शासक और शिक्षक हों, चाहे शासित और शिष्य, उनमें से अधिकतर काम उस समय होते हैं, जब उनको करने वालों का मस्तिष्क ठीक ठिकाने नहीं होता।

इसको आप विनोद या अत्युक्ति न समझिए, हमारे जीवन में जो गड़बड़ और पशुपन दिखाई देता है, उसका मुख्य कारण यह है कि अधिकतर लोग निरन्तर नशे की हालत में रहते हैं। यदि लोग शराब से बेहोश न होते तो क्या सम्भवतः वे मारकाट और खून-खराबी के उन कामों को करते जो आजकल वे कर रहे हैं ?

बिना किसी आवश्यकता के एक कम्पनी बनाई जाती है, पूंजी

इकट्ठी की जाती है, मजदूर जुटाये जाते है, अन्दाज लगाये जाते है और योजनाये तैयार की जाती है। एक ऊची वुर्ज वनाने के लिए हजारो टन लोहा और लाखो दिन मजदूरो का श्रम खर्च किया जाता है। लाखो आदमी इस वुर्ज पर चढते है, थोडी देर वहा ठहरते है और फिर वापस नीचे उतर आते है। लोगो के दिलो में इस इमारत को देखकर इसके अलावा और कोई ख्याल पैदा नही होता कि दूसरे स्थानो मे इससे भी वडी इमारते वनाई जाय। क्या ठीक मस्तिष्क वाले ऐसा कर सकते है ? दूसरा उदाहरण लीजिए। वर्षो से यूरोप के लोग जन-सहारक साधनो की खोज मे जुटे हुए है और ज्योंही वच्चे जवान होते है, उन्हे अधिक से अधिक सख्या में जन सहार की शिक्षा दी जाती है। हर एक आदमी जानता है कि वर्वर लोगो का हमला नही होने वाला है, किन्तु विभिन्न सभ्य और ईसाई ये तैयारिया आपस ही मे एक दूसरे के विरुद्ध करते रहते है। सव जानते है कि यह कष्टदायक, असुविधाजनक, हानिकारक, अनैतिक अपवित्र और अविवेकपूर्ण कार्य है, किन्तु फिर भी सव लोग पारस्परिक सहार में सलग्न है। कुछ यह निश्चय करने के लिए कि कौन किसके साथ मिलकर किसको मारे, राजनैतिक गठबन्धनो की योजना करते है। कुछ उन लोगो का पथ-प्रदर्शन करते है जिन्हे सहार करने की शिक्षा दी जाती है। और शेष अपनी इच्छा, अपने अन्त करण और विवेक के विरुद्ध इन सहारक तैयारियो में हिस्सा वटाते है। क्या ठीक मस्तिष्क वाले लोग ऐसा कर सकते है ? केवल शरावी लोग ही, जिनके दिमाग की हालत कभी ठीक नही रहती, ऐसे काम कर सकते है और जीवन और अन्तरात्मा के द्वन्द की इस भयकर स्थिति मे रह सकते है। न केवल इस उदाहरण में ही, वल्कि अन्य दिशाओ में भी हमारी तरह के आदमी इसी भयकर स्थिति मे पडे हुए है।

मेरा ख्याल है कि आज से पहले अपनी अन्तरात्मा की पुकार और

लोगो के कार्यों मे इतना विरोध कभी नही रहा ।

मानवता को मानो आज काठ मार गया है। ऐसा मालूम होता है मानो कोई बाह्य कारण उसको अपने आदर्शों के अनुसार स्वाभाविक स्थिति में पहुचने से रोक रहा है और वह कारण यदि उसे एकमात्र कारण न कहा जाय तो मुख्य कारण तो कहना ही पड़ेगा, है लोगो की प्रमत्त शारीरिक अवस्था, जो शराब और तम्बाकू के कारण हमारे अधिकाश लोगो की हो रही है।

इस भयकर बुराई से जिस दिन मुक्ति मिलेगी, उस दिन मानवता के लिए नये युग का प्रारम्भ होगा और वह युग जल्दी ही आ रहा प्रतीत होता है। बुराई को पहचान लिया गया है। मादक द्रव्यो के इस्तेमाल सम्बन्धी हमारे दृष्टिकोण मे परिवर्तन हो चुका है। लोग इनकी भयकर हानियों को समझ चुके है और उनकी ओर निर्देश करने लगे है। और दृष्टिकोण का यह प्राय अगोचर परिवर्तन मनुष्यो को अनिवार्यत मादक द्रव्यो के पाश से मुक्त कर देगा, और अन्तरात्मा की आवाज सुनने के लिए उनके कान खुल जायगे और वे अपनी अनुभूति के अनुकूल अपनी दिनचर्या विताने लगेंगे।

मालूम होता है कि ऐसा होना शुरु भी हो गया है किन्तु जैसा कि हमेशा होता है, तमाम निम्न वर्गों पर असर होने के बाद अब केवल उच्च वर्गों में इस क्रिया का प्रारम्भ हो रहा है।

: ३ :

उद्योग और आलस्य

[१]

"In the sweat of thy face shall thou eat bread, till thou return unto ground; for out of it was thou taken."

—Gen. III. 19.

पञ्च महाभूतो से तुम्हारे शरीर की सृष्टि हुई है, इसलिए जब तक तुम्हारा शरीर इन पञ्चभूतो में पुन विलीन न हो जाय, तब तक तुम निरन्तर परिश्रम करके—पसीना बहा कर—अपना उदर पोषण करो। —जिनेसिस, भाग ३, अध्याय १६।

टी. मिहालोविच बोण्डारीफ ने एक पुस्तक लिखी है। इसका शीर्षक है 'उद्योग और आलस्य', और इस पर बाइबिल का उपरोक्त उद्धरण दिया गया है। इसकी हस्तलिखित लिपि का मैंने अवलोकन किया है। भाषा के सौदर्य, स्पष्टता और ओज की दृष्टि से यह पुस्तक मुझको अत्यन्त चमत्कारी मालूम हुई। इसकी प्रत्येक पक्ति से लेखक के विश्वास की सत्यता स्पष्ट रूप से टपकती है। लेकिन सबसे बडी बात यह है कि इस पुस्तक में जो मूल विचार प्रतिपादित किया गया है, वह बडा महत्वपूर्ण, गहरा और सत्य है।

श्रीयुत टी. एम. बोण्डारीफ का जन्म सन् १८२० में एक गुलाम खानदान में हुआ था। सन् १८५८ मे वह २५ वर्ष के लिए फौज में नौकरी करने को भेज दिये गये। लेकिन वहा जाकर वे 'सबारेरियन' सम्प्रदाय (जो बाइबिल के पुराने सस्करण को ही प्रामाणिक मानता था।

और दूसरी अनेक बातो मे यहूदी धर्म का अनुसरण करता था) के अनुयायी बन गये। परिणामस्वरूप १८६७ मे वे माण्डेरिया के ऊवीना नामक स्थान को निर्वासित कर दिये गये । यहा पर उन्होने एक किसान के रूप मे भारी उद्योग और परिश्रम करके अपने लिए एक अच्छा सुखदायक परिवार बसा लिया था । लेकिन यहा पर भी उन्होने अपने 'रोटी के लिए मजदूरी' के सिद्धान्त का प्रचार करनेका प्रयत्न किया, जिसकी वजह से वे पुन. दरिद्र बन गये । उनकी उपरोक्त पुस्तक अधिकारियो की कोप-दृष्टि की वजह से रूस मे प्रकाशित नही हो सकी, लेकिन फ्रेंच और दूसरी भाषाओ में उसके अनुवाद प्रकाशित किये जा चुके है । अपनी इस पुस्तक का दूसरा शीर्षक बोण्डारीफ ने 'कृषक की विजय' भी रक्खा है ।

इस पुस्तक का आधार-भूत विचार निम्न लिखित है—मनुष्य-जीवन-सम्बन्धी सब बातो मे इस जानकारी का विशेष महत्त्व नही है कि कौन सी वस्तु अच्छी है और कौन सी बुरी । बल्कि जानने की बात तो यह है कि ससार में जितनी भी उत्तम और आवश्यक बाते है उनमें सबसे पहले किसको महत्त्व दिया जाय और क्रमानुसार आगे बढते हुए सबने अन्त में किसको रखा जाय ।

अगर नागरिक विषयो में यह बात इतनी महत्त्वपूर्ण है, तो श्रद्धा सम्बन्धी और आध्यात्मिक विषयो में, जिनके द्वारा मनुष्य अपने कर्त्तव्यो का निश्चय करता है, इसका महत्त्व और भी अधिक बढा-चढा है ।

आरम्भिक गिर्जे का टेटिन नामक एक उपदेशक कहता है कि मनुष्यो के कष्टो का कारण उनका ईश्वर को न पहचानना उतना नही है, जितना उनका एक झूठे ईश्वर में विश्वास रखना, और इस प्रकार जो वास्तव मे ईश्वर नही है उसको ईश्वर की भाति पूजना है । ठीक यही बात मनुष्य को अपने कर्त्तव्यो सम्बन्धी धारणाओ पर भी लागू होती है । मनुष्यो पर आपत्तियां पडने और उनके अन्दर बुराइया पैदा होने

की वजह यह नही है कि वे अपने कर्त्तव्यो को नही पहचानते । वल्कि उन पर आपत्तिया आने और उनके अन्दर बुराइया पैदा होने की खास वजह यह है कि उन्होने झूठे कर्त्तव्यो को अगीकार कर रक्खा है और उन बातों को उन्होने कर्त्तव्य बना रक्खा है जिनका वस्तुत उनमे समावेश नही होता और जो वास्तव मे उनका सबसे पहला कर्त्तव्य है, उसको वे अपना कर्त्तव्य नही मानते ।

वोण्डारीफ अपनी पुस्तक मे इस बात की घोषणा करता है कि मनुष्यो के जीवन म बुराइया और आपत्तिया इसलिए आती है कि उन्होने बहुत से हानिकर और निरर्थक नियमो को धार्मिक कर्त्तव्यो का रूप दे रक्खा है और अपने एवम् दूसरे लोगो की दृष्टि से ओझल कर रखा है । उस प्रमुख, परमावश्यक और स्पष्ट कर्त्तव्य को जिसका उल्लेख बाइबिल मे सबसे पहले किया गया है—अर्थात् 'मनुष्य को चाहिए कि वह अपने शरीर मे पसीना बहा कर अपना उदर-पोषण करे ।"

जो लोग उस बात मे विश्वास रखते है कि बाइबिल में लिखे हुए शब्द ईश्वरीय शब्द है और ईश्वर के शब्द पवित्र एवम् अचूक होते है, उनके लिए तो बाइबिल मे स्वय ईश्वर ने जो आज्ञा दे रक्खी है और जिसका कही खण्डन नही हुआ है उसकी न्यायोचितता स्वय सिद्ध है । लेकिन जो लोग बाइबिल पर विश्वास नही रखते उनके सामने इस ईश्वरीय आदेश का महत्त्व और औचित्य दूसरी तरह से सिद्ध किया जा सकता है । वह इस प्रकार कि मनुष्य जाति की आधुनिक अवस्थाओ का अनुसन्धान किया जाय, जैसा कि श्री वोण्डरीफ ने अपनी पुस्तक में किया है । सिर्फ जरूरत इस बात की है कि उस ईश्वरीय आदेश को अलौकिक नही बल्कि मानव-बुद्धिमत्ता का सीधा-सादा चिन्ह समझा जाय । लेकिन दुर्भाग्य मे इस प्रकार के अनुसन्धान-
ार्य मे हमारे सामने हमेशा एक बडी भारी बाधा उपस्थित हो जाया

करती है। वह यह है कि हमारे धर्मगुरुओ ने धर्म-ग्रन्थो के शब्दो को तोड़-मरोड कर उनका इतना मूर्खतापूर्ण और दूषित अर्थ कर डाला है कि हममे से वहुत से लोग ज्योंही इस बात को सुनते है कि अमुक सिद्धान्त का प्रतिपादन तो धर्म-ग्रन्थो के आदेशो मे भी विद्यमान है, त्यो ही हम इस बात को उस सिद्धान्त पर अविश्वास करने का पर्याप्त कारण समझ लेते है।

"मै पवित्र धर्मिक ग्रन्थो की पर्वाह क्यो करू? मै तो जानता हू कि उन सब के अन्दर कूड़ा करकट भरा है। और उनमे से तुम अपनी-अपनी इच्छानुसार चाहे जिस चीज को साबित कर सकते हो।" ऐसी बाते अक्सर उन लोगो के मुह से सुनाई देती है जो धर्म-ग्रन्थो में विश्वास नही रखते और धर्म को एक अनुपयोगी वस्तु समझते है।

लेकिन उनकी यह धारणा युक्ति-युक्त नही है। अगर लोग धर्म ग्रन्थो का गलत अर्थ लगावे तो इसमे उन ग्रन्थो का क्या दोष? और अगर कोई व्यक्ति सत्य बात कहता है तो क्या वह इस बात पर दोष का भागी हो सकता है कि जो बात उसने कही है वह तो धर्म-ग्रन्थो में भी लिखी हुई है?

इसके अलावा एक बात और है, और उसको हमे कभी भूलना नही चाहिए। वह यह कि अगर थोडी देर के लिए हम मान ले कि जिन्हे लोग धर्म-ग्रन्थ कहते है वे मनुष्यो के बनाये हुए है, ईश्वर द्वारा निर्मित नही है, तो भी हमको इस बात का स्पष्टीकरण तो करना ही पडेगा कि क्या वजह है कि दूसरे सब निबन्धो को छोड़ कर लोगो ने मनुष्यो द्वारा रचित इन्ही निबन्धो को स्वय ईश्वर के कहे हुए वाक्य मानना शुरू कर दिया? इसका कोई-न-कोई कारण जरूर होना चाहिए।

और इसका कारण बिल्कुल स्पष्ट है।

इन धर्म-ग्रन्थो को अन्ध-श्रद्धालु लोग ईश्वर द्वारा निर्मित इस-

लिए कहते रहे है कि वे उन सब से उत्तम और श्रेष्ठ है जिनका लोगो को ज्ञान है, और यही वजह है कि कुछ लोगो के द्वारा सर्वदा निन्दनीय ठहराये जाने पर भी ये धर्म-ग्रन्थ अब तक कायम रहे है और आज भी ईश्वरीय माने जाते है। इन धर्म-ग्रन्थो को ईश्वरीय ज्ञान से युक्त माने जाने की वजह यह है कि इनके अन्दर मनुष्य-जाति का सर्वोच्च ज्ञान भरा पडा है। और बाइबिल के नाम से जो धर्म-ग्रन्थ विख्यात है, उसके अनेक भागो के सबध मे वस्तुत यही बात कही जा सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक के आरम्भ मे जो धर्म-वाक्य उद्धृत किया गया है और जिसको वोण्डारीफ ने अपनी पुस्तक में विस्तार के साथ समझाया है, वह भी इस प्रकार के धर्म-ग्रन्थो का एक विस्मृत, उपेक्षित और गलत तरीके से समझा हुआ कथन है। इस कथन और स्वर्ग की कहानी का आम-तौर पर शाब्दिक अर्थ समझ लिया जाता है, मानो इस कहानी मे वर्णित सारी घटनाए वास्तव में किसी अवसर विशेष पर घटित हुई हो। परन्तु इस सम्पूर्ण आख्यायिका का वास्तविक तात्पर्य केवल इतना ही है कि वह मानव स्वभाव की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियो को हमारे सामने आलकारिक रूप में उपस्थित करती है।

मनुष्य मृत्यु से सदा भयभीत रहता है। लेकिन उसकी मृत्यु उतनी ही निश्चित है जितना प्रतिदिन सूर्य का उदय होना। अच्छाई और बुराई का ज्ञान न होने पर मनुष्य सुखी दिखलाई पडता है। लेकिन फिर भी उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए वह निरतर प्रयत्न किया करता है। मनुष्य को आलस्य पसन्द है, और बिना किसी तरह का शारीरिक कष्ट उठाये वह अपनी अभिलाषाओ को पूरा करना चाहता है। लेकिन उसका अथवा उसकी सम्पूर्ण जाति का जीवन केवल परिश्रम और और कष्ट सहिष्णुता से ही कायम रह सकता है।

जिस वाक्य को वोण्डारीफने उद्धृत किया है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इस वाक्य का महत्त्व इस बात में नही है कि उसके बारे मे जन-श्रुति है कि ईश्वर ने यह वाक्य आदम को कहा था, बल्कि इसका महत्त्व इस बात मे है कि यह वाक्य हमारे सामने एक सत्य को प्रकट करता है—मनुष्य जीवन के एक अटल नियम की घोषणा करता है। गुरुत्वाकर्षण का नियम इसलिए सच्चा नही है कि न्यूटन ने उसका प्रतिपादन किया था, बल्कि सचाई इस बात मे है कि मै न्यूटन को जानता हू और उसकी इस बात के लिए मै उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हू कि उस ने मुझको एक ऐसे शाश्वत नियम का ज्ञान कराया जिसके सहारे से मै एक विशेष प्रकार की सम्पूर्ण बातो के रहस्य को समझ सकता हू।

यही बात इस नियम के सम्बन्ध मे भी चरितार्थ होती है कि "मनुष्य को चाहिए कि वह पसीना बहाकर अपना उदर पोषण करे॥ यह एक ऐसा नियम है जो मेरे सामने एक विशेष प्रकार की सम्पूर्ण बातो को अपने असली रूप मे रख देते है। और एक बार इसका परिचय पा लिया तो अब मै इसको कभी भूल नही सकता और मै उस व्यक्ति के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हू जिसने मुझको ऐसा स्वर्ण नियम बताया।

सिर्फ ऊपर-ऊपर से देखने पर तो यह नियम अत्यन्त सरल और परिचित सा दिखाई पडता है और इसमे कहे गये सत्य का प्रमाण प्राप्त करने के लिए हमको केवल अपने चारो ओर एक नजर भर डालने की जरूरत रहती है। लेकिन सच बात तो यह है कि इस नियम को अगीकार करना और इसका पालन करना तो दूर रहा, लोग तक इसके विपरीत नियम को मानते तथा उस पर आचरण करते है। लोगो का विश्वास कुछ ऐसा बन गया है कि राजा से लगाकर रक तक सभी इस नियम का पालन करने के बजाय उससे बचने का प्रयत्न करते है वोण्डारीफ़ की सम्पूर्ण पुस्तक का उद्देश्य इस नियम के स्थायित्व और निर्विकल्पत्व को प्रमाणित करना तथा लोगो को यह बात बतलाना है

कि इस नियम की उपेक्षा करने से उन्हे किन-किन अनिवार्य आपदाओं का सामना करना पडता है।

बोंडारीफ ने इस नियम को दूसरे तमाम नियमो से श्रेष्ठ और सब से पहला नियम माना है।

बोण्डारीफ इस बात को बतलाता है कि हमारे सारे पापो अर्थात् हमारी भूलो और बुरे कामो—की जड यह है कि हम इस नियम की उपेक्षा करते है। मनुष्य के लिए जितने कर्तव्य निश्चित है उन सबमें बोण्डारीफ प्रत्येक मनुष्य के लिए इस कर्तव्य को सबसे प्रधान, सर्व-प्रथम और निर्विकल्प समझता है कि वह अपने हाथो से अपनी रोटी कमाए। यहा पर रोटी के लिए मजदूरी से उसका तात्पर्य उन तमाम भारी और कर्कश कामो से है जो भूख और प्यास जनित मृत्यु से बचने के लिए मनुष्य को करने पडते है, और रोटी शब्द से उसका तात्पर्य अनाज, पानी, पेय पदार्थों, कपडो, मकानो और इधन से है।

इस सम्बन्ध में बोण्डारीफ का मौलिक विचार यह है कि—'जीवित रहने के लिए मनुष्य को परिश्रम करना चाहिए। इस नियम को हम लोग अबतक जीवन का सिर्फ एक अवश्यम्भावी नियम मानते रहे हैं, लेकिन भविष्य मे हमको उसे मनुष्य जीवन का एक लाभदायक नियम मानने लगना चाहिए और इसका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य बना देना चाहिए।

यह नियम समाज का एक धार्मिक नियम बन जाना चाहिए। जिस प्रकार इतवार को छुट्टी रखी जाती है, जिस प्रकार गिर्जा के ईसाई देव-प्रसाद ग्रहण किया करते है, जिस प्रकार मुसलमान दिन मे पाचबार नमाज पढा करते है और जिस प्रकार हिन्दू साय-प्रात सन्ध्या करते हैं तथा एकादशी और अमावस्या को उपवास किया करते है उसी प्रकार यह नियम भी मनुष्यो का एक दैनिक धार्मिक कृत्य बना दिया जाना चाहिये। बोण्डारीफ एक स्थान पर कहता है कि यदि लोग रोटी के

लिए मजदूरी के सिद्धान्त को अपना धार्मिक कर्तव्य मानने लगे तो अपने व्यक्तिगत अथवा विशेष धन्धो मे विना किसी प्रकार की वाधा पहुचाये वह इस नियम का भली भाति पालन कर सकते है। जिस प्रकार गिर्जा-मतावलम्वी लोगो को उनके विशेष रोजगार निर्धारित दिनो पर छुट्टिया मनाने से नही रोकते उसी प्रकार यह नियम भी उनके इन रोजगारो मे वाधा नही पहुचा सकता। प्रतिवर्ष लोग लगभग ८० दिनो की + छुट्टी मनाते रहते है, लेकिन वोण्डोरीफ के लगाये हुए हिसाव के अनुसार रोटी के लिए मजदूरी करने के नियम का पालन करने के लिए चालीस दिन ही पर्याप्त होगे।

आरम्भमे यह वात हमको विचित्र अवश्य मालूम होगी कि सवकी समझ मे आने लायक और इतने सरल साधन के द्वारा, जिसमें किसी प्रकार के कौशल एवम् पाण्डित्य की आवश्यकता नही, हम किस प्रकार मनुष्य-जाति को उसकी असख्य वुराइयो से वचा सकते है। लेकिन इससे भी अधिक विचित्र वात तो यह है कि हम लोग कितने अनाडी है कि अपने पास इतने स्पष्ट, सरल और दीर्घ काल से परिचित साधन के होते हुए भी हम उसकी उपेक्षा कर रहे है और हमारी वुराइयों की दवा नाना प्रकार की जटिलताओ, पाण्डित्य और कौशलपूर्ण वातो में खोजते है। यदि पाठक इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे तो हमारे कथन की सत्यता उनपर भली भाति प्रकट हो जावेगी।

पानी के हौज के पेन्दे मे सूराख होजाने पर अगर कोई आदमी सूराख को वन्द किये विना ही हौज मे से पानी को निकलने न देने

+रूस मे सन्तो के दिन वहुत अधिक सख्या में है। इन दिनों में वहा पर काम की छुट्टी रहती है। लेकिन वहा सप्ताह मे शनिवार को अन्य दिन से आधे या पूरे दिन की छुट्टिया नही रहती। इसलिए जोड़ लगने पर वहा के और इगलैण्ड के छुट्टी के दिनो का समय करीव-करीव वरावर पड़ जाता है।

के भाति-भाति के चतुरता-पूर्ण उपाय करने लगे तो क्या उससे पानी का निकलना वन्द होजायेगा ? समाज मे प्रचलित बुराइयो को दूर करने के लिए हम आज-कल जिन असख्य उपायो को काम मे ला रहे हैं वे सव इसी प्रकार के उपाय है। हम रोग की जड को तो छूते तक नहीं और उसके पत्तो और डालियो को काटने में हमने अपनी सारी शक्ति लगादी है। क्या इससे रोग का नाश हो सकता है ?

समाज के अन्दर कुछ बुराइया तो इस प्रकार की है जिन्हे लोग प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के साथ करते है। उदाहरणार्थ किसी की हत्या कर डालना, किसी को फासी पर लटका देना, कैद में डाल देना, लडाई में मार डालना इत्यादि ऐसे कार्य है जिनमे "मनुष्य हिसा का प्रयोग करके पाप का भागी वनता है। किन्तु अगर इन कार्यो को हम एक ओर रखदे तो यह सवाल पैदा होता है कि मनुष्य जीवन की दूसरी बुराइयो का वास्तविक कारण क्या है ?" सिवाय उन बुराइयो के जो प्रत्यक्ष हिसा के द्वारा पैदा होती है, मनुष्य जाति की तमाम वुराइयो की जड़ है, लोगो की भुखमरी, मनुष्य जीवन के लिए आवश्यक सब प्रकार के पदार्थों का अभाव, अपने सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करना, अथवा इसके विपरीत असयमित और आलसी जीवन विताना और इस प्रकार के जीवन के फलस्वरूप पैदा हुई अनैतिकता और चरित्र-हीनता। ऐसी अवस्था में किसी मनुष्य के लिए इससे अधिक पवित्र दूसरा कौन-सा कर्तव्य हो सकता है कि वह इस असमानता का विनाश करने मे मददगार बने ? वह एक ओर तो जनसाधारण की गरीवी को मिटाने और दूसरी ओर सम्पत्ति के प्रलोभनों का नाश करने मे सहायक वने। और वह कौनसा तरीका है जिससे मनुष्य इन वुराइयो का नाश करने में मददगार वन सकता है ? वह तरीका इसके अतिरिक्त और कुछ नही है कि एक ओर मनुष्य जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले कार्यो में हिस्सा ले और दूसरी ओर प्रलोभनो और चरित्र-हीनता को उत्पन्न करने वाले भोगविलास-

मय, प्रमाद-पूर्ण और असयमित जीवन से अपने आपको मुक्त करले— अर्थात् जैसा कि बोण्डारीफ का कथन है, प्रत्येक व्यक्ति अपने उदर-पोषण के लिए स्वय अपने हाथो से परिश्रम करे।

मनुष्य जाति मे प्रचलित बुराइयो का दुखड़ा कहा तक रोया जाय ! हम लोग बहुत गहराई तक दल-दल में फस चुके है और भाति-भाति के धार्मिक, सामाजिक और कौटुम्बिक कानूनो और नियमो के जाल में हमने अपने-आपको बहुत बुरी तरह जकड लिया है। साथही हमने विविध प्रकार की इतनी धर्माज्ञाओ और उपदेशो का स्वीकार कर रक्खा है कि हमारे अन्दर से सद्-असद् विवेक-बुद्धि का सर्वथा लोप होगया है।

हमारी प्रचलित समाज व्यवस्था वस्तुत. अत्यन्त विचित्र है ! हम मे से एक आदमी मन्दिर मे पूजा करता है, दूसरा आदमी सैन्य-सग्रह करता है, अथवा सेना के लिए जनता से कर वसूल करता है, तीसरा आदमी न्यायधीश का काम करता है, चौथा आदमी पुस्तको का अध्ययन करता है, पाचवा आदमी लोगो की चिकित्सा करता है और छठा आदमी बालको को शिक्षा देने का कार्य करता है। इन सब लोगो ने उपरोक्त कार्यों के करने का बहाना बनाकर रोटी के लिए मजदूरी करने के कर्त्तव्य से अपने आपको स्वतन्त्र कर लिया है और उस कर्त्तव्य को दूसरे लोगो पर लाद दिया है और इस बात को बिल्कुल भूल गये है। असख्य मनुष्य शक्ति-क्षीणता, अति-परिश्रम एवम् भूख के मारे आये दिन मौत के शिकार बनते जा रहे हैं। साथ ही वे इस बात को भी भूल जाते है कि मन्दिरो की पूजा करने वाले, सेना-द्वारा देश की रक्षा करने वाले, अपराधो का निर्णय करने वाले, रोगियो की चिकित्सा करने वाले और बालको को शिक्षा देने वाले—इन सब प्रकार के लोगो का समाज में अस्तित्व बनाय रखने के लिये सबसे पहले इस बात की आवश्यकता है कि उपरोक्त असख्य मनुष्यो को भूखो मरने से बचाया जाय। हम इस बात का जरा भी खयाल नहीं

करते कि मनुष्यो के असख्य प्रकार के कर्त्तव्यो में से कुछ का नम्बर उनके महत्त्व और उपयोगिता की दृष्टि मे सबसे पहले आता है, कुछ का सबसे बाद मे, और यह कि जिस प्रकार मनुष्य को खेत जोतने मे पहले खेत को नीदने का कार्य नही करना चाहिए, उसी प्रकार उसको चाहिए कि वह अपने प्रारम्भिक कर्तव्य को पूरा किये बगैर अन्तिम कर्त्तव्य को पूरा करने का प्रयत्न कदापि न करे।

बोण्डारीफ की सम्पूर्ण शिक्षा का सार केवल यही है। बोण्डारीफ प्रति-दिन के हमारे व्यवहारिक जीवन के उस असन्दिग्ध और प्रारम्भिक कर्त्तव्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना चाहता है। बोण्डारीफ का कथन है कि इस कर्त्तव्य की पूर्ति करने से न तो दूसरे किसी कार्य को हानि पहुच सकती है और न इससे किसी व्यक्ति के मार्ग मे कठिनाइया ही पैदा हो सकती है। बल्कि यह लोगो को दरिद्र और दु खी होने से बचाती है और उनको सम्पत्ति के प्रलोभनो मे फंसने नही देती। इस कर्त्तव्य की पूर्ति का सब-से बडा, सब-से महत्त्वपूर्ण और सब-से अधिक कल्याणप्रद-परिणाम यह होगा कि वह भयकर विषमता नष्ट हो जायगी, जिस के अनुसार सम्पूर्ण मनुष्य जाति आज धनवान और गरीब, किसान और जमीदार, शासक और जनता ऐसे दो भागो मे बटी हुई है, जो एक दूसरे, से घृणा करते है और अपनी इस घृणा को एक-दूसरे की चाटुका-रिता मे छिपा रहे है। बोण्डारीफ कहता है कि रोटी के लिए मजदूरी करने का सिद्धान्त सब लोगो को समान श्रेणी मे पहुचा देता है और भोग-विलास के पर काट डालता है।

कोई भी मनुष्य उत्तमोत्तम वस्त्र पहने हुए, अपने हाथो को स्वच्छ रखते हुए और प्रति-दिन बढिया भोजन करते हुए न तो खेतो मे हल चलाने का कार्य कर सकता है और न कुआ ही खोद सकता है। ऐसे-ऐसे कार्य करने के लिए तो नजाकत की इन चीजो का सर्वथा त्याग करना पडेगा। कोई भी पवित्र धन्धा, जो सब लोगो के लिए सामान्य

हो, मनुष्यों को एक सूत्र मे बाध देगा । बोण्डारीफ का कथन है कि रोटी के लिए मजदूरी करने का सिद्धान्त एक ओर तो उन लोगों को विवेक-शक्ति प्रदान करेगा जो मनुष्य के लिए अत्यन्त स्वाभाविक जीवन-चर्या का परित्याग करके अपनी विवेक-शक्ति खो बैठे है और दूसरी ओर यह उन लोगो का सुख और सन्तोष प्रदान करेगा, जो असन्दिग्ध रूप से उपयोगी स्वय ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट और प्रकृति के नियमो के अनुरूप कार्य को करने मे सलग्न है ।

बोण्डारीफ कहता है कि रोटी के लिये मजदूरी करने का सिद्धान्त मनुष्य जाति मे प्रचलित बुराइयो की एक-मात्र दवा है । अगर मनुष्य इस प्रारम्भिक नियम को ईश्वर के एक अपरिवर्तनीय नियम के रूप मे स्वीकार कर ले—अगर प्रत्येक मनुष्य इस बात को मान ले कि अपने हाथ से मजदूरी करके अपना पेट भरना उसका एक अनिवार्य कर्त्तव्य है—तो दुनिया के तमाम आदमी एक ही परमात्मा मे विश्वास करने लग जाय और एक दूसरे के साथ प्रेम-सूत्र मे बध जाय, तथा जिन कष्टो के भार के नीचे आज हम दबे हुए है, वे सब के सब समाप्त हो जाय ।

लेकिन हम ऐसा करते कहा है ? हम तो आज-कल ऐसी जिन्दगी बिताने के आदी हो गये है, जो उपरोक्त विचार के सर्वथा विपरीत है । हमने इस बात को स्वय-सिद्ध सत्य मान रक्खा है कि सम्पत्ति अथवा धन-दौलत ईश्वर का एक आशीर्वाद और ऊँची सामाजिक स्थिति अथवा पद-प्रतिष्ठा का द्योतक है, जिसके द्वारा हम रोटी के श्रम करने से बच सकते है । हम बोण्डारीफ के मन्तव्य का विश्लेषण किये बिना ही यह मान लेना चाहते है कि उसकी योजना सकीर्ण, इकतर्फी सारहीन और मूर्खता-पूर्ण है । लेकिन हमको चाहिए कि हम उस मन्तव्य का सावधानी के साथ विश्लेषण करें, और फिर इस बात का निर्णय करे कि वह सही है अथवा गलत ।

हम लोग सब प्रकार के धार्मिक और राजनैतिक सिद्धान्तों की आलोचना एवम् जाच-पडताल किया करते हैं। आज हम वोण्डारीफ़ के सिद्धात की भी जाच पडताल कर डाले। सबसे पहले हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि अगर वोण्डारीफ के मन्तव्य के अनुसार धार्मिक शिक्षा द्वारा रोटी के लिये श्रम करने के सिद्धात पर प्रकाश डाला जाय और सब लोग परिश्रम के इस पवित्र और प्राथमिक नियम को मानने लगे, तो इसका परिणाम क्या होगा ?

उस अवस्था मे सब-के-सब मनुष्य हाथ से काम करने लग जावेंगे और अपनी-अपनी मेहनत से कमाई हुई चीजो का उपयोग करने लगेंगे। तब अनाज और मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओ की दूसरी चीजें खरीदने और वेचने के पदार्थ नही रह जायगे।

इसका क्या परिणाम होगा ?

परिणाम यह होगा कि भविष्य में लोग भूखे, प्यासे, नगे और दरिद्र नही रहने पावेंगे। अर्थात् अभाव के कारण मृत्यु के ग्रास न बनेंगे। अगर किसी दैवी प्रकोप अथवा अन्य दुर्भाग्य-पूर्ण परिस्थितियो के कारण उस समय कोई आदमी अपने और अपने परिवार के लिये पर्याप्त अन्न उत्पन्न नही कर सकेगा तो उसका कोई पडोसी जिसने अच्छी परिस्थितियो के कारण विपुल मात्रा मे अन्न पैदा कर लिया होगा, उस आदमी के लिये आवश्यक अन्न की पूर्ति कर देगा। वह खुशी से ऐसा करेगा, कारण जब अन्न बिकेगा नही, तो फिर उसका दूसरा उपयोग भी क्या होगा ? उस समय मनुष्यो को इस बात का प्रलोभन भी नहीं होगा कि वे अभाव के मारे चालाकी अथवा जोर-जबर्दस्ती से अपने लिये रोटी प्राप्त करे। और जब उनके आगे ऐसा प्रलोभन न होगा, तो वे चालाकी और हिंसा का आश्रय भी न लेंगे। जो अभाव आज उन्हे अनैतिक उपायो का आश्रय लेने को विवश करता है उस समय वह दूर हो चुकेगा।

उस अवस्था मे भी अगर कोई आदमी चालाकी अथवा हिंसा का आश्रय लेगा, तो आजकल की भांति उसकी वजह यह हर्गिज नही होगी कि उसको इस प्रकार के दुष्कर्म करने की आवश्यकता है, बल्कि उसकी वजह सिर्फ यह होगी कि वह ऐसे काम करना पसन्द करता है।

न ही उस समय दुर्बल मनुष्यो को—उन मनुष्यो को जो किसी कारणवश अपनी रोटी खुद कमाने मे असमर्थ होगे अथवा जिन्होने अपनी कमाई के साधन को किसी प्रकार खो दिया होगा—रोटी के लिए अपने शरीरो अथवा कभी-कभी आत्माओ को बेच देने की आवश्यकता होगी।

उस समय आजकल की तरह यह आम कोशिश भी न होगी कि खुद तो अपनी रोटी के लिए परिश्रम न किया जाय और दूसरो से परिश्रम करवाया जाय, अर्थात कमजोरो को उनकी शक्ति से अधिक काम लेकर कुचलने की कोशिश की जाय और बलवानो को परिश्रम से बिल्कुल ही मुक्त कर दिया जाय।

आजकल मनुष्यो का दिमाग इस बात मे खर्च नही होता कि श्रम-जीवियो के बोझ को हल्का किया जाय, वह तो इस बात मे खर्च हो रहा है कि किस प्रकार आलसियो के आलस्य को हल्का और आकर्षक बनाया जाय। उस समय मनुष्यो की यह वृत्ति न होगी। जब सब लोग रोटी के लिए श्रम करेगे और इसको प्रथम मानव-नियम समझेंगे, तो हमारी गाडी आसानी से चल निकलेगी। मूर्खो ने गाड़ी को उलट दिया है और इधर से इधर खींच रहे है। इस गाड़ी को हम पुनः पहियो पर खडी कर देगे। परिणाम यह होगा कि गाड़ी टूटने से बच जायगी और आसानी से चलने लगेगी।

हम रोटी के लिए मजदूरी करने के सिद्धान्त को नही मानते और इसे घृणा की दृष्टि से देखते है। यह है हमारे आजकल के जीवन की विशेषता। इस गलत जीवन को सुधारने की कोशिशे ठीक वैसी ही है

जैसी कि पहियो को आकाश की ओर करके गाडी को खींचने की कोशिश हो सकती है। जबतक हम गाडी को उलट कर रास्ते पर खडी नही कर देते, तबतक हमारे सारे सुधार निष्फल सिद्ध होगे ।

सक्षेप मे बोण्डारीफ का यही विचार है और मैं इससे पूरे तौर पर सहमत हू । यह सारा मामला मेरे सामने पुन इस रूपमें उपस्थित होता है—किसी जमाने मे लोग एक दूसरे को खाजाते थे । जब मनुष्यों के अन्दर पारस्परिक एकता की भावना का उदय और विकास हुआ तो इस प्रकार का पैशाचिक कार्य असभव हो गया और लोगो ने एक दूसरे को खाना छोड दिया । इसके बाद ऐसा जमाना आया, जब लोगो ने हिंसा और जोर-जबर्दस्ती के द्वारा अपने साथी मनुष्यो के पसीने की कमाई पर नाजायज कब्जा करके उन्हे अपना गुलाम बना डाला । लेकिन मनुष्यो की चेतना-शक्ति का और अधिक विकास हुआ और यह कार्य भी अबअसम्भव हो गया । यद्यपि अब भी छुपे-हुए तरीकों से बल प्रयोग होता है, तथापि उसका वह स्थूल रूप नष्ट हो चुका है—अर्थात् अब लोग दिन-दहाडे एक दूसरे की कमाई नही हडपते । आजकल इस हिंसा और बल-प्रयोग ने जो स्वरूप धारण कर रक्खा है, वह यह है कि कुछ लोग दूसरे लोगो की आवश्यकताओ और अभावो का लाभ उठाकर उनका शोषण करते है । बोण्डारीफ की सम्मति मे वह जमाना भी बहुत जल्द आनेवाला है, जब लोगो के अन्दर मनुष्य-जाति की एकता की भावना इतनी अधिक विकसित हो जावेगी कि मनुष्यो के लिये दूसरे लोगो की आवश्यकताओ भूख, प्यास, और सर्दी-गर्मी—का लाभ उठाकर उनका शोषण करना असम्भव हो जावेगा । और जब रोटी के लिये मजदूरी करना लोग अपना एक अनिवार्य कर्तव्य मानने लगेंगे और जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओ के पदार्थों का खरीदना-बेचना बन्द कर देगे, तो वे आवश्यकता पडने पर एक दूसरे के लिए भोजन-वस्त्र सुलभ करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझेंगे ।

इस मामले पर दूसरे दृष्टि-कोण से विचार करते हुए मैं ब्रोण्डारीफ द्वारा प्रस्तुत समस्या को निम्नलिखित रूप में समझता हूं—हमने बहुधा लोगों को यह कहते हुए सुना है कि केवल नकारात्मक नियम और धार्मिक आदेश सामाजिक सुधार के लिए काफी नहीं हैं" हमको तो स्वीकारात्मक नियमों की—ऐसे नियमों की जो हमें बतलावें कि अमुक-अमुक कार्य हमको करने चाहिए— जरूरत है।" ईसा मसीह के निम्न-लिखित पांच आदेश हैं—१ किसी को तुच्छ अथवा भ्रान्त-चित्त मत समझो और न किसी के प्रति क्रोध करो २ स्त्री-सम्भोग को आनन्द का विषय मत समझो· और चाहे तुम स्त्री हो या पुरुष, जिस-किसी के भी साथ तुम्हारा एक बार वैवाहिक सम्बन्ध बंध चुका है, उनका साथ मृत्यु पर्यंत मत छोड़ो, ३ किसी के आगे सौगन्ध न खाओ, न अपनी स्वतन्त्रता ही किसी को बेचो ४. दूसरों के आक्रमणों और जोर-जबर्दस्ती को सहन करो, हिंसा के द्वारा उनका कभी प्रतिकार मत करो और ५. किसी भी मनुष्य को अपना शत्रु मत समझो; बल्कि अपने शत्रुओं से भी अपने मित्रों की भांति ही प्रेम करो। लोग अक्सर इस बात की शिकायत किया करते हैं कि ईसामसीह के ये पांचों आदेश हमको केवल यह बतलाते हैं कि मनुष्य को अमुक-अमुक काम नहीं करने चाहिए। लेकिन ऐसा कोई भी आदेश अथवा धार्मिक नियम नहीं है जो हमको यह बतलावे कि मनुष्य को अमुक-अमुक कार्य करने चाहिए।

और यह बात सचमुच बड़ी विचित्र मालूम होती है कि ईसा मसीह के उपदेशों में इसी प्रकार के निश्चित आदेश नहीं हैं कि मनुष्य को अमुक-अमुक कार्य करने चाहिए। लेकिन यह बात सिर्फ उन्हीं लोगों को विचित्र मालूम हो सकती है, जिनकी ईसा के उपदेशों में श्रद्धा नहीं है। अन्यथा उन लोगों को मालूम हो जाता कि ईसा की शिक्षा इन्हीं पांच आदेशों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसकी सारी शिक्षा स्वयं सत्य की शिक्षा है।

ईसा सत्य का पुजारी था। उसने सत्य की जो शिक्षा दी, उसको हम आदेशो और धार्मिक नियमो मे नही ढूढ़ सकते, बल्कि उसको हम सिर्फ एक ही चीज मे पा सकते है। वह चीज है उसके द्वारा हमारे सामने रक्खा गया मनुष्य जीवन का नया आदर्श। मनुष्य जीवन के इस नवीन आदर्श का सार यह है कि व्यक्तिगत सुख के द्वारा जीवन और उसके शुभ फलो को प्राप्त नहीं किया जा सकता, जैसा कि साधारणतः लोगो की धारणा है, उन्हे तो परमात्मा और मनुष्यो की सेवा करने से ही प्राप्त किया जा सकता है। यह ऐसा आदेश नहीं है, जिसका किसी प्रतिफल की आशा से पालन किया जाय और न यह किसी रहस्यपूर्ण और अबोधनीय पदार्थ की रहस्यपूर्ण अभिव्यक्ति ही है। बल्कि यह मनुष्य-जीवन के पहले से छिपे हुए एक नियम का केवल उद्घाटन मात्र है। इसके द्वारा हमको यह लाभ होता है कि जब हम इस सत्य को समझ लेंगे, तभी जीवन हमारे लिए वरदान सिद्ध हो सकेगा। इसलिए ईसा की सम्पूर्ण स्वीकारात्मक शिक्षा इस एक बात मे व्यक्त कर दी गई है– ईश्वर से प्रेम करो और अपने पडोसी से भी उसी तरह प्रेम करो जिस तरह तुम अपने-आप से एवम् अपने कुटुम्बियो से प्रेम करते हो। इस उपदेश पर कुछ लिखना तथा इसका विस्तार करना असम्भव है। यह उपदेश सम्पूर्ण है, क्योकि इसके अन्दर सब कुछ समाया हुआ है। यहूदी-धर्म और बौद्ध-धर्म के आदेशो या धार्मिक नियमो की भांति ईसामसीह के आदेश और धार्मिक नियम भी मनुष्यो को सिर्फ उन परस्थितियो का सकेत मात्र करते है, जिन मे दुनिया के मायाजाल मनुष्यो को जीवन के सच्चे प्रयोजन से भटका देते है। और यही वजह है कि धार्मिक आदेश और धार्मिक नियम ससार मे अनेक हो सकते है, लेकिन मनुष्य-जीवन सम्बन्धी स्वीकारात्मक शिक्षा—इस बात की शिक्षा कि मनुष्य को क्या करना चाहिए–सिर्फ एक ही हो सकती है।

प्रत्येक मनुष्य का जीवन कही-न-कही जा रहा है। चाहे उसकी इच्छा हो या न हो, वह हिलता-डुलता है, कर्म करता है–जीवित

रहता है। ईसा ने मनुष्यो को जीवन का राजमार्ग बतला दिया और साथ ही उस सच्चे मार्ग से भटकाने वाले रास्तो की ओर भी सकेत कर दिया। इस प्रकार के सकेत अनेक हो सकते हैं। यही धार्मिक आदेश कहलाते हैं।

ईसा ने इस प्रकार के पाच धार्मिक आदेश दिये हैं, और सब आदेश ऐसे हैं कि आज भी इनमे से एक मे भी कोई कमीबेशी नहीं की जा सकती। लेकिन जीवन के राजमार्ग की दिशा सिर्फ एक ही बतलाई गई है, क्योकि एक निश्चित दिशा को बतलाने वाली सीधी लाइन एक ही हो सकती है।

इसलिए यह विचार, कि ईसा की शिक्षा मे केवल नकारात्मक आदेश ही हैं और स्वीकारात्मक एक भी नही है, सिर्फ उन्ही लोगो को सच्चा प्रतीत होता है, जो या तो सत्य की शिक्षा अर्थात ईसामसीह द्वारा इङ्गित जीवन के सच्चे मार्ग की दिशा नही जानते, या उस शिक्षा मे विश्वास नही रखते। लेकिन जो लोग ईसा द्वारा बतलाये गये जीवन-मार्ग की सत्यता मे विश्वास रखते है, वे उसके उपदेशो में स्वीकारात्मक आदेशो को ढूढ निकालने का प्रयत्न नही करेगे। इन लोगो को तो जीवन के सच्चे मार्ग की शिक्षा से उद्भव होने वाले समस्त स्वीकारात्मक कार्यो का चाहे वे कार्य कितने ही भिन्न-भिन्न प्रकार के क्यो न हों हमेशा स्पष्ट और निस्सशयास्पद रूप से पता होता है।

इस जीवन-मार्ग मे श्रद्धा रखने वाले लोग, स्वय ईसामसीह की उपमा के अनुसार, निर्मल जल के महान स्रोत की भाति होते है। उनके सारे कार्य इस जल के प्रवाह के समान होते है। यह जल बाधाओं और आपत्तियो की पर्वाह किये बिना सब तरफ बहा करता है। ईसा की शिक्षा मे श्रद्धा रखने वाले आदमी के सामने यह सवाल कभी पैदा ही नहीं होता कि उसको किन-किन स्वीकारात्मक आदेशो का पालन करना चाहिए, ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार कि भूमि में से फूट कर

बाहर निकलने वाले जल-स्रोत के सामने यह सवाल पैदा नहीं होता कि वह किधर बहे और किधर न बहे। वह तो बह निकलता है और भूमि, घास, वृक्षों, पक्षियों, पशुओं और मनुष्यों की प्यास बुझाता जाता है।

और जो आदमी ईसामसीह की शिक्षा में श्रद्धा रखता है वह भी ठीक ऐसा ही करता है।

ईसामसीह की शिक्षा को मानने वाला आदमी यह कभी नहीं पूछेगा कि वह क्या करे। जो प्रेम उसके जीवन की प्रेरक-शक्ति बना हुआ है, वह उसको निश्चित और अनिवार्य रूपसे बतलादेगा कि वह कहाँ काम करे, कौनसा काम पहले करे और कौनसा बाद में।

थोडी देर के लिये हम यहां पर ईसामसीह की शिक्षा के आदेशों को एक ओर रख देते हैं, जो इन बातों से पूर्ण रूप से भरे हुए हैं कि प्रेम का सर्वप्रथम और अत्यन्त आवश्यक कार्य यह है कि हम भूखों को भोजन दें, प्यासों को जल पिलावें वस्त्रहीन लोगों के शरीरों को कपडे से ढकें, और दीन-हीन, असहाय, अनाथ व्यक्तियों तथा कैदियों की सहायता करें। हम यहां पर केवल अपनी विवेक-शक्ति से काम लेना चाहते हैं। हमारी बुद्धि, हमारी आत्मा और हमारी अन्तःस्फूर्ति सब के सब हमको इस बात के लिए बाध्य करते हैं कि जीवित मनुष्यों के प्रति प्रेमपूर्ण सेवा का कोई दूसरा कार्य हाथ में लेने से पूर्व सबसे पहले हम अपने मानव बन्धुओं की कष्टों और मृत्यु से रक्षा करके उनकी जिन्दगी को कायम रक्खें और उन्हें उस मृत्यु से बचावें जो प्रकृति के साथ उनके दुस्साध्य संघर्ष में पग-पग पर उनके सामने आ खडी होती है। दूसरे शब्दों में हम लोगों को मनुष्य-जीवन के लिये परमावश्यक परिश्रम के कामों में—जमीन में किये जाने वाले प्राथमिक, कठोर और भारी श्रम के कार्यों में—हिस्सा बटाने के लिए आदेश दिया गया है।

जिस प्रकार कोई जल-स्रोत यह प्रश्न नहीं पूछ सकता कि मैं

अपना पानी किस तरफ बहाऊ ?--आया घासो और वृक्षो के पत्तों पर छीटे डालते हुए ऊपरकी तरफ पानी बहाऊ या घास और वृक्षो की जडो मे पानी पहुचाते हुए नीचे की तरफ अपने पानी को बहाऊ ? उसी तरह से सत्य की शिक्षा मे श्रद्धा रखने वाला आदमी भी यह प्रश्न नही पूछ सकता कि मुझको सबसे पहले कौन सा कार्य करना चाहिए ?--आया मै लोगो को विद्या पढाऊ उनकी रक्षा करू, उनका मन बहलाऊ और उनके सामने जीवन के सुख-साधनो को प्रस्तुत करू, या जीवन-धारण करनेके लिए आवश्यक सामग्री के अभाव मे उन्हे नष्ट होने से बचाऊ ? और जिस प्रकार किसी-किसी स्रोत का जल भूमि को तृप्त करने के बाद ही जमीन की सतह पर बहने लगता है और तालाबो को भरता एवम् मनुष्यो और पशुओ की प्यास बुझाता है, ठीक उसी प्रकार सत्य की शिक्षा मे श्रद्धा रखने वाला पुरुष मनुष्य-जाति की प्राथमिक और परमावश्यक आवश्यकताओ (मागो) की पूर्ति करने के बाद उनमे कम आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति के कार्य मे हाथ लगा सकता है। जब तक वह भूखे लोगो की भूख नही बुझा लेता और जीवन-सामग्री की पूर्ति के सघर्ष मे उनको नष्ट होने से नही बचाता, तबतक वह दूसरा कोई कार्य अपने हाथ मे नही ले सकता। जो मनुष्य सत्य और प्रेम की शिक्षा का अनुकरण वचन से नही प्रत्युत मन, वचन, कर्म सभी से कर रहा है, वह इस बारे मे कभी गलती नही कर सकता कि उसको सब से पहले कौन सा कार्य करना चाहिए। जिस मनुष्य ने दूसरे लोगो की सेवा को ही अपने जीवन का प्रयोजन समझ रक्खा है, क्या वह कभी ऐसी भयकर भूल करेगा कि बेला, सारगी और हारमोनियम बजाकर बढिया बढिया आभूषण तय्यार करके, अथवा गोला, बारूद तथा तोपे बनाकर भूखे और नगे लोगो की सेवा करना प्रारम्भ करे।

प्रेम इतना मूर्ख नही हो सकता।

जिस प्रकार किसी आदमी के प्रति हमारे मन मे प्रेम हो और यदि हम उसको भूखा मरता हुआ देखे तो हमे हमारा प्रेम उसको उपन्यास

सुनाने का आदेश नही देगा और यदि वह आदमी नगा है, तो हमारा प्रेम इस बात को भी बर्दाश्त न करेगा कि हम उसको कपडे पहनाने के बजाय उसके कानो मे बहुमूल्य बालिया पहना दे, ठीक इसी प्रकार मनुष्य-जाति के प्रति हमारा प्रेम हमको इस बात की इजाजत नही देता कि हम उसके सुख से रहने वाले अग का मनोरजन करते रहे और उसके भूखे और नगे अग को जीवन-सामग्री के अभाव मे मर जाने दे।

सच्चा प्रेम,—वह प्रेम जो केवल शाब्दिक ही न हो, बल्कि कार्य में भी परिणत किया जाय—कभी अविवेकपूर्ण नही हो सकता। वह तो हमको सच्ची अनुभूति और सच्ची विवेक-शक्ति प्रदान करता है।

और, इसलिए, जो मनुष्य इस प्रकार के विशुद्ध प्रेम मे ओत-प्रोत होता है, वह अपने कर्त्तव्य के बारे मे कभी गलती नही करता। वह तो सबसे पहले उसी कार्य को करता है, जिसको मनुष्यो के प्रति उसका प्रेम सबसे आवश्यक बतलाता है। इस प्रकार वह उसी कार्य को करता है, जिसमे भूखे, नगे, ठड से ठिठुरते हुए और परिश्रम के भार से दबे हुए मनुष्यो के प्राणो की रक्षा होती है। लेकिन यह कार्य प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष सघर्ष करके ही किया जा सकता है।

जब मनुष्यो का अधिकाश समुदाय खतरे मे हो, भूखा और नगा हो और जीवन-सामग्री के अभाव की पूर्ति के लिए घोर सघर्ष कर रहा हो, तब वे ही लोग इस दुखी समुदाय को मदद न पहुचाते हुए दूर खडे तमाशा देख सकते है, जो अपने आपको तथा दूसरो को धोखा देना चाहते है। ऐसे ही लोग दूसरे लोगो का बोझ बढाते हुए भी अपने आपको और अपनी आँखो के सामने नष्ट होने वाले सदूरे मनुष्यो को यह विश्वास दिला सकते है कि वे उनकी रक्षा करने के साधन ढूढ रहे है अथवा ढूढने मे तल्लीन है।

कोई भी शुद्ध हृदय व्यक्ति, जिसने दूसरो की सेवा करना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझ रखा है, अपने मुह से ऐसी बात नहीं

कहेगा। अथवा यदि वह इस बात को कहता है, तो उसकी आत्मा उसके इस भ्रम का कभी समर्थन नही करेगी, बल्कि उसको अपने कथन का प्रतिपादन श्रम-विभाजन के कुटिल सिद्धान्त मे से ढूंढना होगा। कनफ्यूशियस से लगाकर मुहम्मद साहब तक सच्ची मानवीय बुद्धिमत्ता के जितने भी अवतार हुए हैं, उन सब के अन्दर उसको यही एक सत्य बराबर दृष्टिगोचर होगा (और ईसाई धर्म-ग्रन्थों मे यह सत्य और भी अधिक स्पष्टतापूर्वक दिखलाई पडेगा) कि मनुष्य दूसरो की सेवा श्रम-विभाग के सिद्धान्त के अनुसार नही, बल्कि सबसे सरल स्वाभाविक और एक मात्र आवश्यक तरीके से करे, अर्थात् वह बीमारों, गरीबो, भूखो, नगो और कैदियो की सेवा करे। और बीमारो, गरीबों, भूखो, नगो एवम् कैदियो को अपने खुद के तात्कालित प्रत्यक्ष परिश्रम द्वारा ही सहायता पहुचाई जा सकती है—क्योकि बीमार, भूखे और नगे लोगो के लिए अधिक समय तक प्रतीक्षा करना कठिन होता है, वे तो भूख और ठड के मारे मर जाते हैं।

जिस आदमी ने सत्य की शिक्षा को अगीकार कर लिया है और जिसने अपने जीवन का लक्ष्य दूसरो की सेवा करना निश्चित किया है, उस आदमी का जीवन उसको बाइबिल के आरम्भ मे व्यक्त किये गये इस प्राथमिक नियम की ओर ले जायगा कि, "मनुष्य को चाहिए कि वह अपने पसीने की कमाई से अपना उदर पोषण करे।" बोण्डारीफ़ इस नियम को 'सबसे पहला' नियम कहता है, और इसको सर्वसाधारण के सामने स्वीकारात्मक आदेश के रूप में रखता है।

और जो लोग ईसामसीह द्वारा व्यक्त किये गये मनुष्य-जीवन के तात्पर्य को स्वीकार नही करते हैं, उनके लिए तो यह सचमुच स्वीकारात्मक नियम है। ईसा के पहले के लोगो के लिये यह ऐसा ही नियम था, और जो ईसा की शिक्षा को नही मानते, उनके लिए यह आज भी ऐसा ही बना हुआ है। इस आदेश का यह तकाजा है कि

हममे से प्रत्येक व्यक्ति को धर्म-ग्रन्थो मे व्यक्त और हमारी बुद्धि द्वारा अनुमोदित परमात्मा के नियमानुसार—अपना उदर-पोषण अपने निज के परिश्रम से ही करना चाहिए। यह स्वीकारात्मक नियम था, और जब तक सत्य की शिक्षा द्वारा मनुष्य-जीवन का तात्पर्य मनुष्य को ज्ञात होता रहेगा, तबतक यह नियम स्वीकारात्मक ही रहेगा।

परन्तु ईसामसीह ने मनुष्य-जीवन का जो उच्च आदर्श हमारे सामने रखा है, उसके अनुसार रोटी के लिए मजदूरी करने का सिद्धान्त पहले के समान अक्षुण्ण रहते हुए भी ईसामसीह की मनुष्य-सेवा सम्बन्धी एक मात्र स्वीकारात्मक शिक्षा के भली भाति अनुकूल बैठना है। इसलिए इस नियम को अब हमे स्वीकारात्मक नही, प्रत्युत् नकारात्मक ही समझना चाहिए। ईसाई दृष्टिकोण से यह नियम हमारा ध्यान एक प्राचीन माया-जाल की ओर आकर्षित करता है; और मनुष्यो को बतलाता है कि जीवन के सच्चे मार्ग से इधर-उधर न भटकने और उस पर दृढतापूर्वक आरूढ रहने के लिए उन्हे किन-किन बातो से बचते रहना चाहिए।

जो लोग सत्य की इस शिक्षा को नही मानते, तथा जो लोग पुरानी बाइबिल के अनुयायी है उनके लिए इस नियम का अर्थ निम्नलिखित है—"अपनी रोटी अपने निजके हाथो मे परिश्रम करके उपार्जन करो।" लेकिन ईसाई धर्म के अनुयायी के लिए इस नियम का तात्पर्य नकारात्मक है। उसको यह नियम कहता है कि, "जबतक तुम दूसरो के परिश्रम मे उपार्जित पदार्थो का उपभोग करते हो और अपने हाथो से अपनी आजीविका पैदा नही करते, तबतक तुम यह न समझो कि तुम दूसरो की सेवा कर सकते हो।"

यह नियम प्रत्येक ईसाई का ध्यान उस अत्यन्त प्राचीन और भयकर प्रलोभन की ओर आकर्षित करता है, जिससे मनुष्य-जाति पीड़ित है। बोण्डारीफ की शिक्षा का उद्देश्य इसी प्रलोभन (जिसका परिणाम अत्यन्त

भयकर है और जो इतना प्राचीन है कि उसके बारे मे यह कहना भी हमारे लिए कठिन है कि यह मनुष्य का स्वाभाविक सस्कार नही, बल्कि एक भ्रम-मात्र है) का विरोध करना और इस प्रलोभन एवम् उनके परिणामो को जनता के सामने असली रूप मे रख देना है। क्या पुरानी बाइबिल पर विश्वास रखने वाले, क्या नई बाइबिल को मानने वाले और क्या बाइबिल को न मानने और अपनी विवेक-शक्ति पर भरोसा रखने वाले—इन सब लोगो को समान रूप से बोण्डारीफ की शिक्षा के अनुसार आचरण करना चाहिए।

मै इस सिद्धान्त की सच्चाई को प्रमाणित करने और इसके खिलाफ़ पेश की जाने वाली उन तमाम पेचीदा और तरह-तरह की दलीलो को झूठा साबित करने के लिए, जो हम सब की जबानो पर हर समय तैय्यार रहती है बहुत-कुछ लिख सकता था और मैने बहुत-कुछ लिखा भी होता। पर सच बात तो यह है कि हम लोग इस बातको जानते है कि सब दोष हमारा है, और इसलिए हम लोग अपनी गलती का औचित्य सिद्ध करने को सर्वदा तत्पर रहते है। इसलिए मै इस सम्बन्ध में कितना ही विस्तारपूर्वक और कितनी ही उत्कृष्ट भाषा में अपने विचार प्रकट क्यो न करू और मेरे विचार कितने ही तर्क-सम्मत क्यो न हो, फिर भी मै अपने पाठको का समाधान तबतक नही कर सकूगा, जबतक उनकी बुद्धि मेरी बुद्धि के विरुद्ध अडी रहेगी और उनका हृदय वज्र की भाति निष्ठुर और बर्फ की तरह ठण्डा बना रहेगा।

और इसलिए मै अपने पाठको से अनुरोध करता हू कि थोड़ी देर के लिए वे अपनी बुद्धि की उडाने भरना बन्द करदे। उन्हे न तो मेरे साथ वाद-विवाद करने की जरूरत है और न किसी बात को साबित करने की ही। मेरा अनुरोध उनसे यह है कि वे केवल अपने हृदय को टटोलें और उसीसे अपने सवालो और दलीलो का जवाब मांगे। आप चाहे कोई भी क्यो न हो कितने ही कुशाग्र-बुद्धि क्यो न हो, अपने आस-पास

वालो के प्रति कितने ही दयावान क्यो न हो, आप कितने ही ऊँचे पद प्रतिष्ठा वाले क्यो न हो, फिर भी मै आपसे पूछता हू भोजन करते समय और राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक आयुर्वेदिक अथवा शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओ की मीमासा करते समय यदि आप अपने दर्वाजे पर किसी नगे, भूखे, ठड से ठिठुरते हुये, बीमार और कष्ट पीडित मनुष्य को देखे और उसका करुण-क्रन्दन सुनें, तो क्या आप चुपचाप बैठे रह सकते हैं—क्या आपके दिल में जरा भी वेदना, जरा भी सहानुभूति का भाव जागृत नहीं होगा ? नही, ऐसा हर्गिज नही हो सकता। तो फिर ऐसे कष्टपीडित लोग तो हर वक्त हमारे आस-पास मडराते रहते है। अगर हमारे दर्वाजे पर न सही, तो हमारे घर से दस कदम अथवा दस मील के फासले पर अवश्य ऐसे व्यक्ति मिल जावेगे। वहा पर वे लोग मौजूद है और आप इस बात को जानते है।

और आपको ऐसी शान्ति, ऐसा आनन्द कहा मिलेगा, जो उपरोक्त असलियत के ज्ञान से विषाक्त नही हो चुका है ? आप उनको अपने दर्वाजे पर न देखने पावे, इसलिए आप सींखच लगाकर या अपनी निष्ठुरता से उन्हे अपने से दूर रखते है, या खुद ऐसी जगह चले जाते है, जहा पर वे दिखलाई न पडे। फिर भी वे सर्वत्र विद्यमान है।

और अगर आपको कोई ऐसा स्थान मिल जावे, जहा आप उनको न देख सके, तो भी आप सत्य और परमात्मा से बच कर कहीं नहीं जा सक्ते। तब फिर प्रश्न यह उठता है कि ऐसी अवस्था मे करना क्या चाहिए ?

आपको क्या करना चाहिए—इस बात को आप जानते है और सत्य की शिक्षा से भी आपको इस बात का पता लग जायगा।

ऊपर से उतर कर नीचे आजाओ—तुमको यह जो गढा दिखाई पडता है, वह दरअसल ऊपर की सतह है—और जो लोग भूखो के लिए भोजन पैदा करते और नगो के लिए वस्त्र तैयार करते है उनके

साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर खडे हो जाओ। मन मे जरा भी झिझक अथवा भय न लाओ, ऐसा करने से तुम्हारा जरा भी नुकसान नही होगा बल्कि सब तरह से तुम्हारा लाभ ही होगा। सर्व-साधारण की श्रेणी मे अपना नाम लिखा लो और अपने नाजुक, कमजोर एवम् अनभ्यस्त हाथो से भूखो को भोजन और नगो को कपडा देने वाले प्राथमिक कार्य मे लग जाओ, रोटी के लिए श्रम करो, प्रकृति के साथ सघर्ष करो, तब अपने जीवन मे पहली बार तुमको इस बात का अनुभव होगा कि तुम दृढ भित्ति पर खडे हो। साथ ही तुमको यह भी अनुभव होगा कि तुम्हारे अन्दर सच्ची शान्ति है, तुम स्वतन्त्र हो, स्वावलम्बी हो, तुमने दृढतापूर्वक पैर जमा रक्खे है और तुम अपनी यात्रा के अन्तिम सिरे तक पहुच चुके हो। इसके अतिरिक्त तुम उस परिपूर्ण, निर्मल और निर्विकल्प, आनन्द का भी उपभोग करोगे, जो और कही नही पाया जाता और जिसकी रक्षा न तो अपने घरो मे दरवाजे बना देने मे होती है और न खिडकियो तथा बैठको मे पर्दे डाल देने मे ही।

तब तुम्हे ऐसे-ऐसे नूतन आनन्द प्राप्त होगे, जिन्हे तुमने पहले कभी अनुभव नही किया होगा। तब तुम अपने जीवन मे प्रथम बार उन मजदूर और सीधे-सादे लोगो—अपने मानव बन्धुओ—से परिचय प्राप्त करोगे, जो अब तक दूर रह कर तुम्हारा भरण-पोषण करते रहे है, और उस समय तुम्हारे आश्चर्य का ठिकाना नही रहेगा, जब तुम उनके अन्दर ऐसे-ऐसे सद्गुणो को देखोगे, जिनको तुमने पहले कभी नही देखा था—तुम्हारे साथ वे इतनी विनय इतनी शिष्टता इतनी दयालुता प्रकट करेगे कि तुम्हे सचमुच ताज्जुब होगा तुम अपने आपको उनके अयोग्य समझोगे।

उन्ही पर जीवन बसर करने और जीवन भर उनसे घृणा करने के बाद अन्त मे अपने आपको पहचान लेने और अपने अनभ्यस्त हाथो से उनकी मदद करने की कोशिश करने के बदले वे तुम्हारे प्रति अत्यन्त सहृदयता कृतज्ञता और आदर प्रकट करेगे। जहा तुमको तिरस्कार और

डाट-फटकार की आशा थी, वहा तुम्हे उसके सर्वथा विपरीत अनुभव होगा।

तब तुम देखोगे कि जिस चीज को तुम एक द्वीप समझते थे और जिसके बारे मे तुम्हारा यह ख्याल था कि समुद्र के तूफान मे डूबने मे बचकर तुमने उस पर शरण पाई है, वह एक दलदल मात्र है जिसम तुम अधिकाधिक गहरे फसते जा रहे थे। इसके विपरीत दूसरी ओर तुम देखोगे कि जिस चीज को समुद्र समझ कर तुम डरते थे, वह एक सूखा भूभाग है और उस पर तुम दृढता और आनन्दपूर्वक निश्चिन्त हो कर घूम फिर सकते हो। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई परिणाम निकल भी नही सकता, क्योंकि तब तुम असत्य और भ्रम-जाल (जिस मे तुमको अपनी निज की इच्छा में नही, बल्कि दूसरो के कहने मे आ कर फस गये थे) को तोड कर सत्य का आश्रय ले चुके होगे, और ईश्वर के उद्देश्य का तिरस्कार करने के स्थान पर उसका पूर्णतया पालन करने मे जुट पडे होगे।